



रेवती-दान-समालोचना

[मूल-श्रुति हिन्दी अनुवाद सहित]

लेखक

शतावधानी पं० महाराज श्री रत्नचन्द्रजी स्वामी

हिन्दी-अनुवादक

पं० शोभाचन्द्रजी भारिल, न्यायतीर्थ

प्रकाशक

श्री० श्री० स्था० जैन धीर मण्डल, फेकड़ी

द्वारा

दासगिर ।

१० सं० }
१९९१ }

धीर संवत्
२४११ }

प्रति
१००० }

नधमल लुनिया द्वारा

भादर्श प्रेस (केसरगुज डाकघराने के पास) अजमेर में

सञ्चार — जीतमल लुनिया

जैन समाज के इस बड़े भारी प्रेस में सब प्रकार के
छपाई बहुत उमदा, सस्ती और जल्दी होती है ।

प्राक्कथन

“जैन जयन्तु शासनम्”

भगवान् महावीर का शासन जयवन्त बलों, विजयशाली हो
सी भावना प्रत्येक जैन में होती है—होनी चाहिये। तीर्थंकरों
युग में उनके शासन के साधु-भावक में कितनी प्रेम वृत्ति,
तनी धर्म भावना, वैसा पापभिरुत्व, आत्मवेपक वृत्ति और
सा शासन प्रेम था! इसकी संपूर्ण जिनायाम और पूर्वाचार्यों के
न्यादि पढ़ने से स्पष्ट होता है।

एक ही समय में पार्वं प्रमु के शासनवर्ती मुनि और महा-
र प्रमु के शासनवर्ती मुनि थे; किन्तु परस्पर की विनीतता,
पान्वेपक दृष्टि और निरद्वैत जानकर हमें बड़ा आश्चर्य होता
(देखिये उत्तराध्यायन सूत्र अध्याय २३)

उन्हीं पार्वं प्रमु, महावीर प्रमु एवं अन्य तीर्थंकरों के समय
नाना क्रियाकांड में रक्त परिभ्राजक, सन्यासी, विद्वंदों, वापस
दि भी थे; किन्तु जिनेश्वर के सच्चे साधु भावकों की उनपर
ही माध्याय दृष्टि, अनुकम्पा युक्ति और आत्म धर्म के सन्मुरा
णीमात्र को लेजाने की वैसी परोपकार वृत्ति थी! (देखिये
बर्तोजी के कयी शतक व चरित्र उनके वर्णन से भरे हैं:)

ने बनाये हैं। अतः विद्यावाट की प्रथा कुछ भिन्न हो भिन्न है; किन्तु अन्त में एक ही है।

श्वेताम्बर दिगम्बरों पर या दिगम्बर श्वेताम्बरों पर कलंक रहे हैं, वे दोनों प्रभु महावीर के शासन पर ही झुटारापात करते हैं। व्याघ्राद न्यायकों समझने वाले विविध नयवाहों से भी समन्वय कर सकता है, तो किञ्चित् स्थूल भेद वाले श्वेताम्बर दिगम्बर मान्यता का समन्वय तो अति सुलभ है ही।

जब कि, दिगम्बर भाइयों ने श्वेताम्बर आगमों पर आक्षेप करके महावीर ने आस्तादार किया है ऐसा भगवन्तों मूर्ख के देखती दान के अधिकार में सिद्ध करके श्वेताम्बर आगमों को जगद् समझाने को चेष्टा की है तो उन भाइयों को साथ समझाने के लिये, उनकी दृष्टान्त दशा को सुधार लेने की अनुकम्पा वृत्ति में तेन-धर्म दिवाकर पं० रत्न शतावधानीजी रत्नचन्द्रजी महाराज 'देवता दान' के विषय में आगवोद्धार समिति के विद्वान् मुनि महर्षों का उपस्थिति में जयपुर विराजते समय यह निबन्ध तैयार कर दिगम्बर भाइयों का प्रयत्नकारण किया है।

मुनि श्री ने वैद्यक के प्राचीन ग्रन्थों (वैद्यक शास्त्र सिन्धु, नीपथि हर्षण, कैयदेव निषण्डु शालिग्राम निषण्डु आदि) से, पाश्चात्तीय ग्रन्थों (कारिकाबला, सुभूत संहिता आदि) से और कौष ग्रन्थों (शान्दार्य चिन्तामणि आदि) से, काव्यग्रन्थों वाग्भट आदि) से; ऐसे २ प्राचीन एवं विश्वग्न ग्रन्थों से इस माताजीचना में यह सिद्ध किया है कि, जिन राष्ट्रों (मागध, कुट, कपिल आदि) को एकार्य वाची (पशु, पक्षी) समझ कर आपत्ति की जाती है, वे राष्ट्र वनस्पति के नाम वाची भी है।

आज एक प्रभु महावीर के शासन में उन्हीं के तत्त्वज्ञान और किलोसॉफी को मानने वाले जैन श्वेताम्बर, दिगम्बर, स्यान्वासी, तेरह पन्थी आदि किरों में और उसके भी अनेक प्रभेदों में बटे हुए हैं। उन सब जैनों के तोर्यकर (इष्ट देव), नवकाय मन्त्र (इष्ट जात्य) और तत्त्वज्ञान में कोई फर्क नहीं है। बिल्कुल एक वाच्यता होते हुए भी क्रिया कांडों की, परम्परा की विभिन्न मान्यताओं को प्रधानता देकर परस्पर में लड़ रहे हैं। पत्तों के लिये हम मूलों को छेद रहे हैं।

दिगम्बर भाई कहें कि, श्वेताम्बरों के महावीर ने मांस खाया और श्वेताम्बर कहें कि, दिगम्बरों ने स्त्री-शूद्रों के अधिकार छीन लिये, प्राज्ञत्व को अपनाया इत्यादि से महावीर को कलंकित किया। इस प्रकार पारस्परिक विसंवाद से अजैनों को हँसने का आपके इष्टदेव महावीर प्रभु को और जैन आगम ग्रंथों (तत्त्वज्ञान) को कलंक देने का मौका मिलता है। अपने आपको विद्वान् मानने वाले, शासन के हितैषी कहलाने वाले, शास्त्र के समर्थ मानने वाले आप स्वयं ही उन प्रतिस्पर्धि के कुल्हाड़े के दाधे हो जाते हैं।

क्या श्वेताम्बरों का महावीर और दिगम्बरों का महावीर भिन्न है ? कमखिलासोफी और तत्त्वज्ञान में फर्क है ? कभी नहीं। अधिक में अधिक इतना कह सकते हो कि, हम एक ही शिवा के गृहम् २ पुत्र हैं। उन्हीं वीर परमात्मा के निर्दिष्ट मोक्षमार्ग को पहुँचने के भिन्न २ मार्ग मात्र हमारे पूर्वज आचार्यों (जो कि, दृष्टस्थ ही थे, मले ही हममें कुछ अधिक बुद्धिमान होंगे)

बताये हैं। अतः त्रिपाकांड की प्रथा कुछ भले ही भिन्न है;
कन्तु प्येय एक ही है।

श्वेताम्बर दिगम्बरों पर या दिगम्बर श्वेताम्बरों पर कलंक
हैं, ये दोनों प्रभु महावीर के शासन पर ही कुठाराघात करते
। स्याद्वाद न्यायकी समझने वाले विविध नववादों से भी
कर सकता है, तो किंचित् स्थूल भेद वाले श्वेताम्बर
मान्यता का समन्वय तो अनि सुलभ है ही।

जब कि, दिगम्बर भाइयों ने श्वेताम्बर आगमों पर आक्षेप
महावीर ने मांसाहार किया है ऐसा भगवती मूत्र के
'दान' के अधिकार में सिद्ध करके श्वेताम्बर आगमों की
समझाने की चेष्टा की है तो उन भाइयों को साथ समझाने के
के, उनकी दयनीय दशा को सुधार लेने की अनुकम्पा धृति में
दिवाकर २० रत्न शातावधानीजी रत्नपन्द्रजी महाराज
'देवता दान' के विषय में आगमोद्धार समिति के विद्वान् मुनि
को उपस्थिति में जयपुर विराजते समय यह निषण्ध
कर दिगम्बर भाइयों का भ्रमनिवारण किया है।

मुनि श्री ने वैशक के प्राचीन ग्रन्थों (वैशक शाब्द मित्तु,
दर्पण, कैयदेव निषण्ड, शांतिप्राम निषण्ड आदि) से,
ग्रन्थों (कारिकावला, सुभुत संहिता आदि) से,
कोष ग्रन्थों (शब्दार्थ चिन्तामणि आदि) से, काव्यग्रन्थों
(वाग्भट्ट आदि) से; ऐसे २ प्राचीन एवं विश्वज्ञ ग्रन्थों से इस
में यह सिद्ध किया है कि, जिन शब्दों (मातृ,
कपोत आदि) को एकार्थ वाची (पशु, पक्षी) समझ
आपत्ति की जाती है, वे शब्द वनस्पति के नाम वाची भी हैं।

एक शब्द के अनेक अर्थ होने हैं । मभी जिन्हें के जैन भगवान की वाणी को अनेकार्थं सुक्त तो मानने ली हैं । फिर इन्हीं शब्दों को एकार्थी मान लेना भगवान की वाणी का अपमान करना, या अपनी सुन्दता बताना या अपनी दृढ्यादी बुद्धि का प्रदर्शन नहीं है ?

अधिक तो क्या कहें ! एक सीधी-मादी बात है कि, याज्ञिक-कादि अनेक प्रकार की हिंसा को रोक कर अहिंसा का मर्यादा उठाने वाले, पकाये हुए मांस में भी मनुस्मृत्यम जीवों की उत्पत्ति मनाने वाले, पृथ्वी-वाणी-व्यमस्पति जैसी जीवनावश्यक वस्तुओं के सचित्त भक्षण में हिंसा बताने वाले, अप्रतिप्राणी आयुष्य वाली देह धारण करने वाले प्रमु महावीर पशु-पक्षी का मांस का भक्षण कर ही कैसे सके ? जैन धर्म का नाम अवण करने वाले को विधर्मी भी इसे मंजूर नहीं कर सकता । तो बड़े आश्चर्य और स्तब्ध की बात है कि, इन्हीं महावीर के पुत्र दिगम्बर जैन भाइयों को यह कैसे सूझी ?

ऐसा भी मान लिया जाय कि, दिगम्बर भाइयों को श्वेताम्बर सूत्रों पर आरोप करना था, तो भी क्या आज तक किसी श्वेताम्बरीय साधु या श्रावक की हिंसा की ओर प्रवृत्ति देखी ? यदि श्वेताम्बरी लोग उक्त शब्दों का पशु-पक्षी अर्थ करते तो वे अवश्य मांसाहारी हुए होते परन्तु ऐसा आज तक देखने में नहीं आया है ।

मुझे सम्पूर्ण विश्वास है कि, दिगम्बर भाई इस रेवती दान समालोचना को पढ़कर अपने मन्तव्य को सुधार लेंगे और श्वेताम्बरीय जैन भाई भी रेवती दान के शब्दों का परमार्थ

...का भ्रमनिवारण करेंगे ।

व्यावर (शास्त्रप्रधान) }
 महावीरबन्धु-म. २४६१ }
 वि. सं. १९९२ वैश्वशा. १३ }

त्रिभुजास्य का मुख्य लेखक
 धीरजलाल के० तुरखिया
 आ. अधिष्ठाता, जैन गुरुकुल व्यावर

नोटः—देवगी-दान का स्वीकरण प्राप्त कर उन दिगम्बर पंडितों
 के लिये लिखा गया है, जो कि, दवेनाम्बर भागमों के मनमाने भ्रमपूर्ण
 आशय करते हैं । इन पण्डितों को विद्वत्ता एवं बुद्धि प्रमाण सहित उनकी
 प्रेष भाषा संगृहीत में ही पं० मुनि जी स्वयंश्रेष्ठ महाराज ने यह पद्य
 आत्मिक निरूपण किया था, जिसका लाभ आम जनता को भी मिले यह
 आवश्यक समझ करके एक दिगम्बर ध्यायवारी पंडितजी ने ही इसका
 व कर देने को हुका की है, अतः उनको धन्यवाद दिया जाता है ।

खुश खबर

एक पन्थ दो काज

श्री जैन गुरुकुल, व्यापार में अपना

प्रेस (छापाखाना) शुरू कर दिया है

यदि आप हिंदी, गुजराती, इंग्लिश भाषा में हिमालय प्रकाश (कृष्ण पत्रिका, हुरी. पत्र, रिमोट बुक, ब्रॉड पढ़ी पुस्तक आदि) की सुन्दर शुद्ध छपाई का, काम कराना चाहते हैं तो गुरुकुल प्रि० प्रेस में ही छपाने का आर्डर दीजिये ।

आपका काम ठीक समय पर, सुन्दर और शुद्ध प्रकाश से होगा । टाइम भी सजिव लगेगा और गुरुकुल के उद्योग विभाग को उत्तेजन मिलेगा ।

पत्र व्यवहार का पता—

मैनेजर, श्री जैन गुरुकुल प्रिंटिङ्ग प्रेस
व्यापार (राजपूताना)

दो शब्द

महानुभावो,

'रवेताम्बर मत समीक्षा' पुस्तक तथा जैन मित्र आदि पत्रों में रेवती का भगवान को दिया आहार अमरु था तथा और भी कई आरोप विश्व वन्द्य वीर भगवान पर पढ़कर रोमांच कांपने लगे।

आलोचकों को निर्मूल सिद्ध करने के लिए परम पूज्य, प्रातः स्मरणीय शतावधानीजी पंडित मुनि श्री रत्नचन्द्रजी स्वामी ने 'रेवती दान समालोचना' शीर्षक लेख लिखा, जो जैन प्रकाश के छपान (महावीर) में प्रकाशित हो चुका है। किन्तु लेख संस्कृत भाषा में होने के कारण आम जनता को लाभ कम दे सका। अतः सर्व साधारण के हितार्थ यह लेख हिन्दी भाषानुवाद सहित प्रकाशित किया गया है।

लेख में स्वामीजी महाराज ने सप्रमाण, आगम, तर्क व शब्द शास्त्रानुसार विपत्ती समाज का भ्रम निवारण व समाज पर आरोपित कलहों को निर्मूल सिद्ध कर दिया है और यह भली भौति स्पष्टित है कि रेवती का दिया हुआ आहार कैसा था? आगम व शब्द शास्त्रानुसार यह स्वयं सिद्ध है कि कपोत कुक्कुट, मार्जार आदि शब्द केवल पशु पक्षी ही नहीं, किन्तु वनस्पति पक्षी भी हैं।

जो महात्मा हमारे आगम, साम्प्रदायिक कट्टरतावश,
केवल खंडनात्मक दृष्टि से ही देखने हैं, वे सूरों के वास्तविक भाव
ही न समझ सके तो भला रहस्य की खोज तो दूर रहो। इसी
कारण पंडित अजितप्रसादजी शास्त्रों ने अपनी कीर्ति व ह्वाता
की धुन में रेवती के लिए मांसाहारिणी आदि शब्द लिखने का
हुंसाइस किया है जो श्री श्वेताम्बर आगमों की अतभिज्ञता
स्पष्ट परिचय है।

पाठक, इस पुस्तक को जिज्ञासा भाव व तत्त्व निर्णय की
दृष्टि से पढ़ें और वास्तविक रहस्य का निर्मय करें।

नम्र निवेदक

धनराज जैन

मंत्री

श्री श्वेताम्बर स्थानक वासी, जैन वीर मंडल केकड़ी (अजमेर)

श्री २वे. म्या. जैन वॉर्मण्डल, केकड़ी का

संक्षिप्त परिचय

केकड़ी (जि० अजमेर) में पहिले कोई स्था० जैन संस्था नहीं थी । न कोई विद्वान् मुनि महात्मा का पधारना होता था । सद् भाग्य से सं० १९८७ फाल्गुन कृष्ण २ को महावैरागी, एकान्त मौन योगी प्रेमी, आदर्श ब्रा० ब्र० आत्मार्थ मुनि श्री मोहनदासिजी महाराज श्री का पदार्पण हुआ । मुनि श्री के उपदेशावृत्तसे स्था० जैन भी संघ में नूतन जागृति हुई और चैत्र शुक्ला १ सं० १९८८ को एक मंडल की स्थापना हुई ।

मंडल के प्रथम प्रेमी कसाही मंत्री धनराजजी जैन और समासरी ने भी संघ की सेवा करना प्रारम्भ किया, जय से प्रति वर्ष चातुर्मास (मुनिवर या महासतीजी के) होते लगे । प्रमोदयानक बन गया और सूत्र बसोमी, टोकार्गो, तथा सामाजिक, धार्मिक, राष्ट्रीय आदि १५०० पुस्तकों का संग्रह हो गया ।

इस प्रकार पुस्तकालय और चांपनालय चल रहा है । मंडल के आय व्यव और कार्य की रिपोर्टें यथा समय प्रकट होती रहती है । एक मंडल की शक्ति से ही इस समालोचना की ५०० प्रति छपायी गयी है ।

स्थान २ पर किसी सुसंगठित संस्थायें ग्लोबल शासन सेवा का सुयोग प्राप्त करना जैन भाइयों का पवित्र कर्तव्य है ।

आचार मूल ग्रन्थों का सूची

१. वर्नाश्रम दर्पण—सं० कविराज विरजचरण गुप्त काव्य-
भूषण, राजवैद्य, कूच (बिहार) सं० १९०९.
 २. सुश्रुत संहिता—हिन्दी भाषानुवाद युक्त, मधाराज—
रघुमलाल, श्रीकृष्णलाल, सन् १८९६.
 ३. वैद्यक शब्द सिन्धु—प्र० कविराज श्री दमोदरचन्द्र गुप्त
सन् १८९४.
 ४. फारिकावली—मिद्वान्त मुक्तावली संहिता श्री विश्वनाथ
पंथानन महाचार्य विरचिता सन् १९१२ प्र. गु. प्रि. प्रेस
 ५. कैयदेव नियण्डु—कर्ता आचार्यदेवचार्य पं. सुरेन्द्र मोहन
B. A. वैद्य कानिधि (कलकत्ता), आचार्य-दयानंद ।
युर्वेदिक कलित्र लाहौर ता. २०-३-१९२८.
प्र. मेहरचंद लक्ष्मणदास, सैदमिट्टा बाजार, लाहौर.
 ६. शब्दार्थ चिन्तामणि—प्रका. मेरपाटेधर महाराज ता.
श्री. सज्जनसिंहजी (उदयपुर), ता. १९४० में उदय
सज्जन पंचालय से प्रकाशित.
 ७. शालिग्राम नियण्डु—सं. शालिग्राम वैद्यः (गुरदादाद)
प्र. रामराजः श्रीकृष्णदासः (बम्बई) सं. १९६९.
 ८. वाग्भट्ट—चरणदास प्रणीत व्याख्या सहित
प्र. वाण्डुरंग जावजी (निर्गुणसागर मुद्रणालय)
बम्बई. शकाब्द १८४६ सन् १९२५.
- रेवतीदान समालोचना के सम्पादन में उपरोक्त ग्रन्थों का
आधार लिखा है । अतः उक्त ग्रन्थों के सम्पादक एवं प्रकाशकों
का आभार प्रकट किया जाता है ।

लेखक—

संकेत सूची

हे. च.	हेमचन्द्राचार्य
रा. नि.	राजनिषण्ड
व.	वर्गः
त्रि. का.	त्रिकाण्डशेषः
भा. पू	भावप्रकाश पूर्व भाग
सु	सुसुत
सु.	सुत्रस्थान
अ.	अभ्यास
मे.	मेदिनी
वा.	वाम्भट
उ.	उत्तरखण्ड, उत्तर दंष्ट्रम्
रत्ना.	रत्नावली
राज.	राजःवल्लभः
प.	परिच्छेदः

देवतीदान समालोचना हिन्दी भाषानुवाद को प्रति १००० निम्न सज्जनों ने अपने स्वर्ण से छपायी हैं । वे धन्यवाद के पात्र हैं ।

श्री रवे. स्था. जैन वीर मण्डल, केकड़ो	प्रति ५००
श्री. कुरालचन्दजी अमयकुमारजी, अल्वर	प्रति १००
श्री. किरजलालजी रामचक्रमजी जैन	” १००
श्री. छोटेलालजी पालावत जैन	” १००
श्री. कांयला के मुख भावक भाई	” २००

बीर भगवान् ने दूसरा यह वाक्य कहा था : मुझ पास—“अग्नि के अग्ने परित्यागिए मज्जार कहाए बुद्धबुद्ध मसए तमाहराहि ।” यह दूसरी वाक्य का समुद्रित अर्थ है ॥ ५१ ॥

इस अर्थ की निरोधः—

इस अर्थ में न कोई अनुचितता है, न दोष है और न कोई आगम-विरोध ही है । अतः यह अर्थ संगत है ॥ ५२ ॥

मोक्ष अर्थ करने से ‘दुवेगरीरकदण्ड’ इस तीन शब्दों का परस्पर संबंध का न बनना, नष्ट आदि गति की प्राप्ति, स्वर्ग आदि सुगति की अप्राप्ति तथा मोक्षद्वार का निषेध करने वाले आगम-वाक्यों से विरोध, आदि को जो अनेक दोष आते हैं, इनमें से एक भी दोष बनगपनि-अर्थ करने से नहीं रहता । अतः बनगपनि अर्थ ही सर्वथा संगत है । इसमें कृपा भी अलंघन का अनुपपत्ति नहीं है ॥ ५३ ॥

मोक्षार्थ का परित्याग करके, बनगपनि अर्थ की गिद्धि होने में शैवली द्वारा दिये हुए दान की पूर्ण छुटता निश्चयन होनी है ॥ ५३ ॥

शैवली के द्वारा दिये हुए दान की परीक्षा करने से निष्कर्षित किसे हुए हुए निषेध में, अगला विप्लव संबंध देनेसे हुए वाक्यार्थ का विचार करने से, मोक्षार्थ का निराकरण करके बनगपनि-अर्थ की सिद्धि होने से यह स्पष्टमान निमित्त है कि शैवली के द्वारा दिया हुआ दान अष्टाद नहीं

कथं निरिचनोन्मत्ताह—

आगमोद्धारसंस्थायाः, मिलितानां सभासदाम् ।

परस्परविमर्शेण, जातोऽयमर्थनिश्चयः ॥ ५४ ॥

आगमोद्धारसंस्थाया इति—श्री अजमेराख्यपत्तने साधु-
सम्मेलनप्रसङ्गे शास्त्रपर्यालोचनकृते स्थापिता याऽऽगमोद्धारसमिति-
स्तस्या. सभासदः प्रतिनिधियो गण्युराध्याययुवाचार्यपूज्यअमोज्ञस-
ञ्चपिप्रभृतयः । ये संप्रति जयपुरपराने विराजन्ते शास्त्रपर्यालोच-
नार्थं मिलितानां तेषां परस्परविमर्शेण—परस्परं विहितशास्त्रपर्या-
लोचनेन अर्थ—प्रकृतनिबन्धगतार्थनिर्णयः कृतः साधित-
इत्यर्थः ॥ ५४ ॥ प्रशस्तिः

खनिध्यंकधरावर्षे, माघशुक्लाष्टमीतिथी ।

भौमे भारतविख्याते, जयपुराख्यपत्तने ॥ ५५ ॥

पूज्यगुलाबचन्द्रार्द्धधन्वजपरागसेविना ।

रत्नेन्दुना निबन्धोऽयं, निर्मितो मुक्तयेऽस्तु नः ॥ ५६ ॥

खनिध्यंकधरावर्षे इति—खं शून्यं निधिर्नव अङ्को नव
धरा चैका । अङ्कानां वामतो गतिरिति १९९० मिते वर्षे—विक्र-
माब्दे माघमासशुक्लपक्षस्याष्टमीतिथौ भौमे मंगलवासरे भारतवर्ष-
प्रसिद्धे जयपुराख्ये पराने लिम्बहोसम्प्रदायस्याचार्यवरस्य पूज्यश्री-
गुलाबचन्द्रजित्स्वामिनश्चरणकमलरजःसेवकेन रत्नचन्द्रमुनिना
विरचितोऽयं निबन्धो नोऽस्माकं सर्वेषां च मुक्तये कल्पाणायास्तु
भवत्विति ज्ञेयकमायना ॥ ५५—५६ ॥

नमोऽङ्गनिधिभूवर्षे, माघकृष्णदशैश्वरी ।

पञ्चम्य. मृजुटीकेयं, स्वोपज्ञं पूर्णतां गता ॥ ? ॥

विजली से चलनेवाला अजमेर में बहुत बड़ा प्रेम मुल गया

आदर्श प्रेस, अजमेर

उपदा काम, सभ्य की पावन्दी और मुनासिब रेट
हमारी खास विशेषताएँ हैं।

संस्कृत, हिन्दी, उर्दू व अंग्रेजी का सब तरह का काम हमारे
यहाँ बहुत सुन्दरता से किया जाता है। मूफ-संशोधन
का भी संबंध है, कागज का स्टॉक भी रहता है।

किताबों व पत्र पत्रिकाओं के छापने का खास प्रयत्न है।
जैसी माशुमों से प्रार्थना है कि वे अपनी छपाई का सब काम अपने
इस जैन प्रेस में ही भेजने की कृपा करें।

निवेदक—श्रीलाल लूणिया, सञ्चारक-आदर्श प्रेस.

पता—आदर्श प्रेस, अजमेर.

(केसरमंज डाकघाने के पास)

आदर्श पुस्तक-भण्डार

आदर्श प्रेस के मकान में ही यह पुस्तक भण्डार खुला
है। हिन्दुस्थान भर में मिलनेवाली सब प्रकार की हिन्दी
की उत्तमोत्तम पुस्तकें हमारे यहाँ मिलती हैं। सस्ता-साहित्य
मण्डल के राजपूताना प्रान्त के हम सोल एजन्ट हैं।
अमलील या मनुष्य-जीवन को गिरानेवाली पुस्तकें हम नहीं
बेचते। बड़ा सूचीपत्र मुफ्त भेगाइए।

पता—आदर्श पुस्तक-भण्डार, केसरगञ्ज, अजमेर.

शिक्षादायी सुन्दर सस्ती

और

उपयोगी पुस्तकें ।

- | | | |
|-----------------------------|------|---------------------------|
| १—जैन शिक्षा-भाग १ | -)।४ | १८—मोक्ष की कुञ्जी २ भाग |
| २—जैन शिक्षा-भाग २ | अ)।॥ | १९—आत्मबोध भाग १-२-३ |
| ३—जैन शिक्षा-भाग ३ | अ) | २०—आत्मबोध भाग २-३ |
| ४—जैन शिक्षा-भाग ४ (सचित्र) | अ)।॥ | २१—काव्य विद्यास |
| ५—जैन शिक्षा-भाग ५ | ।-) | २२—परमार्थ प्रकाश |
| ६—बालगीत |)।॥ | २३—भाव अनुपूर्व |
| ७—भादर्श जैन | ।) | २४—मोक्ष की कुञ्जी वैभाग |
| ८—भादर्श साधु | ।) | २५—सामायिकप्रतिभ्रनोष |
| ९—विद्यार्थी व पुत्रको से | अ) | २६—तत्त्वार्थाधिगमसूत्रम् |
| १०—विद्यार्थी की भावना | -) | २७—आत्मसिद्धि |
| ११—सुखी कैसे बनें ? | -) | २८—आत्मसिद्धि और सम्यक् |
| १२—धन का दुरपयोग |)।॥ | २९—धर्मों में भिन्नता |
| १३—देशम व वर्षों के वस्त्र |)।॥ | ३०—जैनधर्म पर अभ्य |
| १४—पशुवध कैसे रके ? | अ)।॥ | ३१—समकित के चिह्न १ भाग |
| १५—आत्म-जागृति-भावना | ।) | ३२—समकित के चिह्न २ भाग |
| १६—समकित स्वरूप भावना | -)।॥ | ३३—सम्यक्त्व के आठ भंग |
| १७—मोक्ष की कुञ्जी १ भाग | अ) | ३४—महावीर और कृष्ण |

व्यवस्थापक:—

आत्म-जागृति-कार्यालय, ठि० जैन-गुरुकुल, व्याव

नथमल लुणिया द्वारा

भादर्श प्रेस (केसरगंज बाकुराने के पास) भद्रमेर में छपी ।

॥ ॐ श्री ॥

रेवती-दान-समालोचना

लेखकः—

शतायुधानी पंडित महाराज श्री रत्नचंद्रजी स्वामी

मंगलाचरणम् ।

प्रारंभिसतीबन्धपरिसमाप्त्यर्धमिष्टदेवतानमस्कारमक्रमज्जलमातनंति—

नमस्कृत्य महावीरं, भवपाथोधिपारगम् ।

रेवतीदत्तदानार्थं, यायातथ्यं विचिन्त्यते ॥ १ ॥

नमस्कृत्येति—उपपदविभक्तेः कारकविभक्तेर्ब्रह्मीयस्त्वान्महं
वीरमिती कारकविभक्तिर्ब्रह्मीया । अन्येष्वपीष्टदेशेषु सत्सु विरंता
तया महावीरस्योपादानं वर्तमानशामनपतित्वात्प्रकृतनिषन्धेन
मन्त्रभाष । युद्धविजिता वीरः, कर्मयुद्धविजिता तु महावीरः, वीरे
ष्वपि महान् वीरः, अतुल्यगक्रमदर्शको वर्धमानस्यामीत्यर्थः ।
पराक्रमो दक्षिण इत्यत्र आह-भवेति, भवः संसारः स एवागाधतः
स्वायोधिः समुद्रमग्न्य पारमर्त्तं गच्छतीति भवपाथोधिपारगतम् ।
रेवतीति, रेवतस्या गेन्द्रिचमामनिवासिनी काचिद् गृहिणी, यथा

॥ ॐ अर्ह ॥

रेवती-दान-समालोचना

लेखक :—

शतावधानी पंडित महाराज श्री रत्नचंद्रजी स्वामी

मंगलाचरणम् ।

शरीरहितनिवन्धपरिसमाप्त्यर्थादिद्वेयनानमस्कारस्तु कर्मफलमाननीति—

नमस्कृत्य महावीरं भवपाथोधिपारगम् ।

रेवतीदत्तदानार्थं, याथातथ्यं विचिन्त्यते ॥ १ ॥

नमस्कृत्येति—उपपदविभक्तेः कारकविभक्तेर्वैलीयस्त्वान्महा
वीरमिती कारकविभक्तिर्द्वितीया । अन्येष्वपीष्टदेशेषु सन्तु विशेष
तया महावीरस्योपादानं वर्तमानशतसनपत्तित्वात्प्रकृतनियन्धेन तस्य
सम्बन्धात् । सुखविजेता वीरः, कर्मसुखविजेता तु महावीरः, वीरे-
ष्वपि महान् वीरः, अनुलपराक्रमदर्शको वर्धमानम्यामीत्यर्थः । ॥
पराक्रमो दर्शित इत्यत्र आह—भवेति, भवः संसारः स एवागाधत्वा-
त्पायोविः समुद्रमनस्य पारमन्वं गच्छतीति भवपाथोधिपारगस्तम् ।
रेवतीति, रेवतद्वया मेरुद्विक्कमामनिवासिनी काचिद् गृहिणी, यथा

महावीरस्वाम्यर्थं सिद्धान्तगाराय भैषज्यं प्रतिलाभितम् । तथा इ-
यदानं तस्यायः पदार्थस्तद्विषये केषांचिच्छङ्का विद्यते, यत्तरात्तम्
मांसमासीदन्ये वदन्ति तद्वस्तु वनस्पतिफलादिजन्यमौषधमासीत
पक्षद्वये किं यथातथमिति विशेषेण पर्यालोचनपूर्वकं प्रमाणपुरस्स-
चिन्त्यते विचार्यत इत्यर्थः ॥ १ ॥

चोरस्य रोगोत्पत्तिः ।

रेवतीदानस्य प्रयोजनं महावीरस्वामिनः शरीरे रोगोत्पत्तिः । तस्य
निमित्तं वर्धमानस्वामिने प्रति गोशालकेन प्राक्षिप्ता तेजोलेश्या तद्वर्धनाय-

गोशालकेन विसृष्टा, तेजोलेश्या जिनं प्रति ।

यद्यपि नास्पर्शदीरं, तथाप्यभूदधधाकरो ॥ २ ॥

गोशालकेनेति—अस्य विस्तृतार्थस्तु भगवतीसूत्रे पञ्चश-
लके । अत्र तु सम्बन्धमात्रदर्शकः संक्षिप्तार्थः । गोशाल-
प्रक्षिप्ततेजोलेश्याया महावीरस्वामिशरीरेण सह संपर्को नाभू-
शरीरसमोपग्रदेशादेव तस्याः परावृत्तत्वात् । तथापि सामीप्येन
धानजनकशरसा तेजोलेश्या रोगोत्पत्तिजनकाऽभवदित्यर्थः ॥ २ ॥

रोगस्वरूपम् ।

महावीरस्वामिनः शरीरे रोगोत्पत्ति-साध—

पित्तज्वरस्तनो जातस्तथा वर्चसि लोरितम् ।

असौ विपुकोदाशो, देहे वीरस्य यामवत् ॥ ३ ॥

देवती, मैत्रिकग्राम में रहने वाली एक गृहिणी (गृहस्थ स्त्री) थी जिसने महावीर स्वामी के लिए, निह्न जनगत को औषध दान दिया था। देवती द्वारा दिये हुए दान के विषय में किन्हीं-किन्हीं को आश्चर्य है। किसी का कहना है कि उसने 'मांस' दिया था और कोई-कोई कहते हैं कि मांस नहीं बल्कि अनस्पृश के कल घीरद से बनी हुई दवा दी थी। इन दोनों बातों में से कौन सच सत्य और कौन सच असत्य है ? इसका विशेष रूप से आलोचना और प्रमाण पूर्णक विचार किया जाना है ॥ १ ॥

घीर का रोगोत्पत्ति

महावीर स्वामी के शरीर में रोग का उत्पत्ति होना देवती के दान का निमित्त था और रोग का कारण था—गोशालक के द्वारा महावीर स्वामी पर पड़ी हुई तेजो शक्ति। इन्हीं बातों को बतलाते हैं—

गोशालक के द्वारा भगवान् की ओर फैली हुई तेजो शक्ति ने यद्यपि घीर भगवान् को स्पर्श नहीं किया, तो भी उससे उन्हें व्यथा (रोग जन्य पीड़ा) हो गई ॥ २ ॥

इसका विगूढ विवरण भगवती सूत्र के पञ्चदशें वाक्य में है। यहाँ निम्न प्रकार बताने के लिए संक्षेप में कह दिया है। गोशालक के द्वारा फैली हुई तेजो शक्ति का महावीर स्वामी के शरीर के साथ स्पर्श नहीं हुआ था—घात के फल से ॥ वह छूट गई थी। फिर भी तत्पक्ष तक आने के कारण उसने व्यथा उत्पन्न कर दिया और इसी कारण उसे रोग की उत्पत्ति का कारण कहा गया है ॥ ३ ॥

रोग का स्वरूप

महावीर स्वामी को कैसा रोग हुआ था, यह बताते हैं—

तेजो शक्ति तत्पक्ष आने से भगवान् घीर के शरीर में विषा

पित्तेति—सतमेजोलेष्यामामीप्यात्पित्तज्वरो, घर्चमि लोहिदं
विपुलो दाहश्चेत्येतत्त्रिविधरोगोद्भवः श्रीवीरस्य देहेज्जायत ।
त्रिविधोऽपि दुस्सह इति तदुक्तं भगवत्याम्—“तए एं समरण
भगवओ महावीरस्म सरीरगंसि त्रिपुले रोगायंके पाउमूण दउंउं
जाव दुरहियासे पित्तज्जरपरिगयसरीरे दाहवकंनोए यावि बिइए
अवियाइं लोहियवचाइं पि पकरेइ” —(भग० १५; १५० ६८५) ॥

जनताप्रवादः ।

अनेन जनसमुदाये च प्रवादोऽभूत्तमाह—

गोशालेन पराभूतो, वीरः पित्तज्वरादितः ।

मृत्युमाप्स्यति पणमास्यां, क्षयस्थः प्रसूता कथा ॥ ४ ॥

गोशालेनेति—लोके ईदृशी वाता प्रसूता यन्महावीरस्वामि
गोशालकयोर्विवादे गोशालको विजेता महावीरस्वामी च पराजितः ।
गोशालकस्य तपस्तेजसा परिभूयमानः श्रीवीरः पित्तज्वरव्यापरापीरे
दाहापक्रान्त्या क्षयस्थः सन् मासपट्कान्ते कालधर्मं प्राप्स्यति ।
मन्यते गोशालोक्तिः सत्या भविष्यतीति प्रवादो लोकापवादरूपे
जातः । तदुक्तम्—“एवं खलु समणे भगवन् महावीरे गोशालस्स
मंसलिपुत्तस्स तवेणं तेणं अजाइठ्ठे समणे अंतो छएहं मासाणं
विशज्जरपरिगयसरीरे दाहवकंतीए छउमत्ये वेव कालं करेस्सति”
(भग० १५; १; ५० ६८५) ॥ ४ ॥ ..

अलन होने लगी ॥ ३ ॥
 तेजो छेड़या पास तक आई इस कारण महावीर के शरीर में वि-
 कल हुआ, मल में रक्त आने लगा और तेज चलने होने लगी। इस प्रकार
 तीन प्रकार का रोग उन्हें हो गया। यह तीनों ही प्रकार का रोग असम-
 था। भगवती मृत में कहा है—तब समय भगवान् महावीर के शरीर में
 बहुत से रोग और आलस प्रगट हो गए। वे तीव्र और असह्य थे।
 उनका शरीर पित्त उग्र से व्याप्त हो गया, जलन होने लगी और सूखी
 दस्त कमाने लगे ॥ ३ ॥

जनता-प्रवाद—अफवाह

इस बीमारी के कारण लोगों में जो अफवाह उठी, उस बतौर है—
 गोशाला के द्वारा महावीर परास कर दिये गये हैं। पिता
 वर आदि के कारण छत्रस्य महावीर छह महीने के भीतर ही
 भीतर मृत्यु को प्राप्त हो जाएंगे। इस प्रकार की अफवाह लोगों
 में छूने लगी ॥ ४ ॥

लोक में ऐसी बात फैल गई कि गोशाला और महावीर स्वामी के
 विवाद में गोशाला विजयी हुआ और महावीर हार गए हैं। गोशाला के
 तप के प्रभाव से पराभव पाने वाले भीमहावीर स्वामी का शरीर पित्त
 रक्त से आक्रामक हो गया है और दाह होने से वे छत्रस्य ही रह कर छह
 माह में दाह-धर्म मृत्यु—को प्राप्त होंगे। मादम होता है, गोशाला का
 कथन-वश सच होना। इस प्रकार की बातें लोक में फैलने लगीं
 कहा भी है—

जहाँ जहाँ कहते हैं कि अलक्षिपुत्र गोशाला के तपस्वित्व से परा-
 भव पाये हुए अमल भगवंत महावीर छह महीने के भीतर पित्त वरगादि
 रोग से छत्रस्य अवस्था में ही दाह धर्म पावेंगे ॥ ४ ॥

लोकापवादजन्यं मुनेर्दुःखम् ।

अस्य प्रवादस्य मुनिर्जनैवपि कीदृशीं परिणतिर्जातेति दर्शयति—

स्मृतेरस्य प्रवादस्य, चित्ते चिन्ताव्यथाऽभवत् ।

सिंहाभिधानगारस्य, ध्यानस्थस्य वनान्तिके ॥ ५ ॥

स्मृतेरिति—मेखिकप्रामस्येशानकोशे विद्यमानस्य शालि
कोष्ठकाख्योद्यानस्य समीपे मालुकाकच्छकनाम वनमासीत् । तत्र
श्रीवीरप्रभुः सपरिवारः समचमृतः । सिंहाभिधानस्तत्तद्विषये
मुनिगणान्वितो वनस्यैकान्तप्रदेशे ध्यानमग्नोऽभवत्तदानीं पूर्वं
श्रुतस्य लोकप्रवादस्य स्मृतिर्जाता, तथा च मनसि महद्दुःखं
समजनि । व्यवहार इव धर्मेऽपि लोकापवादो धर्मिजनद्वारेण
परितापघस्येव । अत एवोक्तं—“यदपि शुद्धं लोकविरुद्धं, नाकार-
णीयं नाचरणीयम् ।” तदुक्तम्—“तेणं कालेणं २ समणस्स
भगवओ महावीरस्स अंतेवासी सीहे नामं अणुगारे पगइमए
जाव विणीए मालुयाकच्छगस्स अदूरसामंते छट्ठंछट्ठेणं अनि-
त्तिरोणं २ तवोकम्मेणं उहुं वाहा जाव विहरति, तए णं तस्स
सीहस्स अणुगारस्स माणंतरियाए बहुमाणस्स अयमेयारूवे जाव
समुप्पगित्था—एवं खलु ममं धम्मापरियास्स धम्मोवदेसगस्स
समणस्स भगवओ महावीरस्स सरीरगंसि विउले रोगादंके पाअ
इमूए उज्जले जाव छउमत्थे येव कालं करिस्सति, वदिरसंसि य णं
अभतिरिथिमा छउमत्थे येव कालगए, इमेणं, पयारूवेणं महय
गणोमाणसिएणं दुक्खेणं अभिभूए समाखे आयाअणभूमिओ
पचोरदइ”—(मग० १५;१, पृ० ६८६) ॥ ५ ॥

लोकापवाद से मुनियों को शोक—

इस अपवाद से मुनियों की मोक्षितवृत्ति कैसी हुई, तो करते हैं—

इस अपवाद के स्मरण में, मन में ध्यान करने वाले सिंह नामक भगवान् के मन में चिन्ता जन्म पीड़ा हुई ॥ ५ ॥

मैरिह ग्राम में ईशान कोण में विद्यमान शास्त्रोद्भूत ध्यान के वाद्य मातृष कण्ठ नामक एक वन था । वहाँ भगवान् महावीर अपने शिष्यों के साथ पधारे । भगवान् के शिष्य मुनि-गुण में युक्त सिंह भगवान् वन के एक पुरातन प्रदेश में ध्यान में लीन हुए । उस समय पहले सुने हुए इस लोक-अपवाद का उन्हें स्मरण हो आया । उनके मन में अर्थाधिक दुःख हुआ । जैसे व्यवहार में लोकापवाद असत्य होता है वैसे ही धर्मात्मा पुरुषों की धर्म विषयक अपवाद भी असत्य होता है । इसीलिए कहा है कि "हुद कार्य भी यदि लोक विरुद्ध हो तो नहीं करना चाहिये ।"

वहा भी है—उस वक में, उस समय अमल भगवान् महावीर के शिष्य, मातृष वनमात्र वाले, विनयी सिंह भगवान् मातृषाक्षर के निवृत्त मौन, वृद्धक करते हुए, बाईं कर को वीर्यकर तपस्या करते हुए विचारते थे । ध्यान-अवस्था सिंह भगवान् को ऐसा विचार आया कि मेरे धर्माचार्य, धर्मोपदेशक, अमल भगवान् महावीर के शरीर में विपुल रोग-आतंक प्रकट हुआ है । (ध्यान) छद्मवाच्यता में शरीर रोग करने, वेदा अन्ध मैथिल कहेंगे । सिंह भगवान् इस महान् भावस्थित दुःख से बड़े दुःखी हुए और आत्मपद-भूमि में लगे लीट ॥ ५ ॥

इस तीव्र दुःख के पाद क्या हुआ ?

आश्वासन देने वाला नहीं कोई नहीं था। अनपन उनका दुःख प्रतिकूल बढ़ता-बढ़ता अन्त में आँसुओं के रूप में बाहर निकलन लगा, यही बताते हैं—

वह अनगार मालुयाकच्छ वन में जाकर आर्त्तस्वर से रोने लगे कि हाय ! हाय !! स्वामी (महावीर) की मृत्यु होने पर धर्म की हीनता होगी ॥ ६ ॥

यद्यपि ओर ओर से चित्ताकर आर्त्त स्वर से रोना आर्त्तस्थान के भगवान् है तथापि सिंह अनगार का यह रोना आर्त्तस्थान नहीं है क्योंकि एक तो वह धर्म सम्बन्धी दुःख राग से उत्पन्न हुआ और दूसरे उसमें गुरुभक्ति की भावना थी। उन्हें तो केवल यही चिन्ता थी कि यदि एह मास के भीतर महावीर स्वामी का अवसान हो गया तो अन्ध प्रतापशक्ती क्या करेंगे ? भिक्षुभेद से बीर-शासन को अस्तित्व करेंगे और कहेंगे कि महावीर तो छत्ररथ अवस्था में ही मर गए। इस प्रकार भविष्य धर्म की हानि के विचार से ही वे रोये थे। कहा भी है—मिश्र मालुयाकच्छ था, उसी ओर से आये और मालुयाकच्छ ॥ प्रविष्ट हुए। उसमें प्रविष्ट होकर चित्ता चित्ताकर रोने लगे ॥ ६ ॥

शिष्य को आश्वासन

भगवान् बीर ने सिंह अनगार को शीघ्र मुक्ताने के लिए मुनियों को भेजा। लज्जान से आये हुए सिंह अनगार को बीर ने इस प्रकार आश्वासन दिया ॥ ७ ॥

“कौन शिष्य ? गुरुभक्त होय जो, कौन गुरु ? हितदेशक हो।” यह मुनिराजभाषा में कित्ता हुआ गुरु शिष्य का स्वरूप साफ ही है। अनपु। शिष्य का रोदन भगवान् महावीर ने जाना। उन्होंने तत्काल भगवत् को बुलाकर कहा—“कौमल एवमप्य आकर मेरु शिष्य सिंह अनगार

चदद्वीरः—मम शिष्यः सिद्धमुनिः प्रकृतिभद्रको मालुयाङ्गणे
वने रोदिति, तमाह्वयत । अत्यैतच्छोचमेव सद्गुणं गताः ममदाः
सिद्धान्तगारं सावधानं कृत्वा कथयन्ति तं वीरसन्देशम् । सोऽहं
द्रुतमेव गुर्वीक्षां शिरसि कृत्वा तैः सह मालुकाङ्गणवनात्
सकोष्ठकवनमागत्य शुरुं नखा समीपे स्थितवान् । समुपस्थितं वेदं
इत्थं वक्ष्यमाणप्रकारेण समारवसन् अन्तर्भावितव्यर्थतया
मास इत्यर्थः ॥ ७ ॥

सवीरिका तं गुप्ताश्रमनन्दकमिरयमाः—

रोदिसि त्वं कथं भद्र ! वयमास्या नाम्नि मे मृतिः ।

अर्द्धरोदशवर्षान्तिं, स्थास्यामि त्तिमिपटलो ॥ ८ ॥

रोदिसीति—भीमहावीरः सिद्धं वक्ति—तत्र रोदन्तं

नाम्नि रोदनकारणम् । अज्ञा लोका न जानन्ति सत्यम् ।

लोकप्रवादः । मन्त्रप्रवादप्रयोजकं गोशालकवाक्यमस्ति ।

सत्यमेव । कारणेऽप्ये कार्यमन्यसायम् । न वयमाभ्यैव,

मृत्युर्भविष्यति । अहं स्वस्मिन् भूतजे ।

विचित्रिकाभि अतो विवादं मा कुरु । तदुक्तं—“तं गो शत्रु

भीक्षा ! गोनात्रममर्मन्निपुत्तम तवेणं

अहं मामागं जाय कानं करेभो, अहर्भं अन्नाहं

साहं त्रिंशं मृत्योः सिद्धिमाप्ति”-(मग० १५१, १० ६८१) ॥

इति मगद्वेदेन दत्तं विदितं तस्य चिन्तितं इति वार्तनात्—

निवन्द्येति मम स्थाविः, शीघ्रं भैरवगयोगतः ।

गच्छेदानीं मयोदेन, रेवतीहरिणीहरम् ॥ ९ ॥

लुपाकृष्ण बन में रो रहा है। उसे बुला लामो।" भगवान् की आज्ञा न कर अमर उसी समय वहाँ के लिए रवाना हो गए। वहाँ पहुँचकर सिंह अमरगार को आश्चर्यजनक ढंग से समझाया और समझाया कि वह अमरगार गुरु-आज्ञा निरोधार्थ कहे, मुनिपुत्रों के साथ आलुपाकृष्ण न से शास्त्रकोष्ठ बन में आए और गुरुजी को सम्मान करके उनके पास बैठे। उपस्थित हुए सिंह मुनि को महावीर स्वामी ने इस प्रकार आशस्तन दिया ॥ ७ ॥

समीप में बैठे हुए सिंह मुनि को तसल्ली देते हुए गुरु से बोल—

भद्र ! तू रोता क्यों है ? छह मास में मेरी मृत्यु नहीं होगी। मैं इस पृथिवी मंडल पर साढ़े पन्द्रह वर्ष तक मौजूद रहूँगा ॥ ८ ॥

महावीर, सिंह अमरगार से कहते हैं—तेरा रोना व्यर्थ है, रोने का कोई कारण नहीं। अज्ञ योग सत्य को नहीं जानते। वह अकाल मित्र है। इस अकाल की देखने वाला मोक्षार्थ का दान भी मित्र है। सब कारण ही सत्य नहीं तो कार्य सत्य कैसे हो सकता है ? छह मास में मेरी मृत्यु नहीं होगी। इस भूमक पर मैं साढ़े पन्द्रह वर्ष पर्यन्त विचरण करूँगा। तू विचार न कर। कहा भी है—हे मित्र ! संकलित हुए मोक्षार्थ के सब के तेज से मैं पराभूत नहीं हुआ हूँ और न छह मास में मेरी मृत्यु ही होगी। अभी मैं साढ़े पन्द्रह वर्ष तक और विचरूँगा ॥ ८ ॥

अंशित रहने पर भी रोग का क्या होगा ? कहते हैं—

श्रीवधि के योग से मेरा रोग शीघ्र दूर हो जायगा। प्रसन्न होकर अभी देवसी आदि का घर जाओ ॥ ९ ॥

निवत्स्यतीति—रोगस्यापि नास्ति चिरकालिकत्वम् ।
तन्निवृत्त्युपायमपि जानाम्येव । मदर्थं तु तस्यापि नास्त्य-
वश्यकता तथापि त्वादृशानामाशङ्कां निवर्त्तयितुं दर्शयाम्युपायम् ।
यदोच्छ्रा चेद्विनिवर्त्य विपादं प्रसन्नचित्तेनेदानीमेव रेवतीगाय-
पत्नीगृहं व्रज । तदुक्तं—“तं गच्छह खं तुमं सीहा ! मेढियगाम-
नगरं रेवतीए गाहावतिणीए गिहे”—(भग० १५; १, १^०
६८६) ॥ ९ ॥

तत्र यदेनवणीयं तत्प्रथमं दर्शयति—

हे कपोतशरीरे वै, तथा मधमुपस्कृते ।

ते न ग्राह्ये यतस्तत्राधाकर्मदोषसंश्रयः ॥ १० ॥

हे इति—रेवतीगायपत्न्या भक्तिवशाद् हे कपोतशरीरे
मदर्थमुपस्कृते ते तु नानेये, कुतः ? मदर्थं निष्पादितत्वात्तत्राधाकर्म-
दोषः संभवति । आधाकर्मदोषविशिष्टत्वात्तद्वस्तु न ग्राह्यमिति ।
मूलपाठस्तु—“तस्य णं रेवतीए गाहावतिणीए ममं अट्ठाए डुवे
कयोयसरीरा अक्खदिया तेहि नो अट्ठो”—(भग० १५; १, १^०
६८६) ॥ १० ॥

• विमानेषमित्याह—

मार्जारकृतकं पर्यु-षितं कुक्कुटमांसकम् ।

आनयेषणया सज्जो, भवेद्येनामयत्तयः ॥ ११ ॥

• मार्जारकृतकमिति—यदन्यन्मार्जारकृतं पर्युषितं ह्यस्तन-
निष्पादितं कुक्कुटमांसकं तद्गृहे विपते तत्र मासुकमेपगानुद-

रोग भी चिरबाकीब नहीं है। उसे दूर करने का उपाय भी मैं जानता हूँ। मुझे तो इसकी भी आवश्यकता नहीं परन्तु तुम जिसकी भी आशंका को दूर करने के लिए उपाय बताता हूँ। इच्छा हो तो विषाद को दूर कर, प्रसन्न मन से इसी समय रेवती गायत्री के धारण जाओ। क्या भी है—हैं सिंह! मैत्रिकप्राम नामक नगर में रेवती गायत्री के धारण जाओ ॥ ९ ॥

वह, जो अनेकजीव है उसे परिके दिखाते हैं—

उसने—गायत्री ने—मेरे लिए दो कपोत-शरीर पकाये हैं, वे प्राण नहीं हैं; क्योंकि उनके ग्रहण करने में आधाकर्म योग है ॥ १० ॥

रेवती गायत्री ने अग्नि के वस्त्र होकर मेरे लिए दो कपोत-शरीर पकाये हैं। वे काने योग्य नहीं हैं। क्यों? इसलिए कि वे मेरे लिए पकाये हुए हैं अथः उन्हें ग्रहण करने से आधाकर्म दाप अनेक। तत्पर्य यह कि आधाकर्म योग से पूर्ण होने के कारण वह वस्तु प्राण नहीं है। मूल पाठ हम प्रकार है—

तप—रेवती गायत्री ने मेरे लिए दो कपोत-शरीर सम्पन्न किये हैं। उनमें हमें प्रथम नहीं ॥ १० ॥

तो काना क्या? सो कहें हैं—

माजोरकृतक, कल बनाया हुआ कुक्कुटमांस (क) एषणा पूर्वक ले आओ, जिससे शीघ्र ही रोग दूर हो जाय ॥ ११ ॥

पूर्वोक्त कपोत-शरीर के अनिरिक्त, कल बनाया हुआ कुक्कुट-

मांसवत्कलगर्भेऽप्युक्तत्वान्, मार्जारकुम्भुटकपोतराश्वानां प्रादि
 वद्वनस्पत्यर्थेऽपि विद्यमानत्वान् । तत्कथमिति तु प्रमाणपुरस्सा
 मपे दर्शयिष्यामः । दूष्यार्थका वाऽनेकार्थकाः शब्दाः श्रोत्र
 संशयजनकाः सन्तोऽवश्यमेव विचारणीयपथमायान्ति । एतादृश
 परिस्थितौ प्रसंगादिकमेव निर्णायकं भवति । यथा केनचिच्छ्रेष्ठे
 किंकरं प्रत्युक्तं 'सैन्धवमानय' । एतच्छ्रवणानन्तरं स संशय
 नश्चिन्तयति 'किं लवणमानयामि वाऽश्वम्' । प्रसङ्गोपरिस्थितौ
 निर्णयति । यन्नेदानीं लवणप्रयोजनं प्रमाणप्रसङ्गान् । वा
 नाश्वप्रयोजनं भोजनप्रसङ्गान् । एवमत्राप्युभयार्थकान् - ५
 शब्दान् श्रुत्वा श्रोतारो गच्छन्त्येव चिन्तापथम् । अत्र ये सम्यक्
 दृष्टयः शास्त्रशास्त्रे तु प्रसङ्गानुसारेण सम्बद्ध्युद्दिष्टया सम्यगर्थे
 निरिचन्वन्ति । ये तु मिथ्यादृष्टयस्ते विपरीतमेवार्थं गृह्णीषुं
 तेषां तत्त्वभावत्वान् । यदुक्तं मन्त्रीसूत्रे—“सम्मदिद्विस्तस सप्त
 सुषं मिच्छदिद्विस्त मिच्छसुषं” ॥ १३ ॥

विपरीतदृष्टयः कस्यैव गृह्यन्तइत्याह—

विपर्यस्तधियः केचिन्मत्वा मांसार्थकारश्च तान् ।
 शास्त्रस्यापि सदोपत्वं, रूपापयन्ति यथाकथम् ॥ १४ ॥

विपर्यस्तधिय इति—यथा दृष्टिनिष्ठा सृष्टिः । सम्यक्
 ज्ञानदर्शनावाभिमानतः करणाः केचिज्जनाः प्रकरणारिकमनरेष्वै
 ह्युदमर्थं विहायोपयुक्तानां परमां शाब्दानां प्राणुज्जन्यमांसार्थकत्वं

निर्धाय यथाकथं चिन्तयन् शास्त्रस्य-भगवत्पारिभूतस्यापि
शब्दविशिष्टत्वान्-सदोपपत्त्यं-दुष्टत्वं कथापयन्ति-प्रथयन्ति

वस्तुतस्तु स्वयं दुष्ट. नरोत्तमानं च पदं पारिभूतं वाह—

मिथ्यायुद्धेर्विलासोऽयं, न सदसत्परीक्षणम्
प्राण्यर्थो घटते नैव, प्रसंगेऽत्र कथञ्चन ॥

मिथ्यायुद्धेरिति—अयं प्रलापः शास्त्रस्य दुष्टत्वकथा
न सत्यासत्परीक्षात्मकः, किन्त्वयं मिथ्यायुद्धे-विपरीत-
विलासः परिणामः । मिथ्यामतिः सापेक्षवचनानां पर्याय-
पूर्वकं नार्थं चिन्तयति । यदि सदसत्परीक्षा स्यात्तदा सं-
निहायासंगतमर्थं न स्वीकुर्यात् । विवेकयुक्तिमांस्तु प्रकर-
चिन्तयेत् । कः प्रसंगः, को दाता, को गृहीता, कस्मै
कीदृशं तस्य जीवनमिति सर्वमनुसंधायैवार्थं कुर्यात् ।
दृष्ट्या वा शास्त्रदृष्ट्या चिन्त्यमानेऽस्मिन्प्रसंगे कथंचिदपि ना-
दिशब्दानां प्राण्यर्थो-प्राप्तिमांसाद्यर्थो वा नैव घटते-
इत्यर्थः ॥ १५ ॥

कथं न घटत इत्याह—

नरकायुष्यहेतुत्वं, मांसाहारस्य दर्शितम् ।
स्थानांगादिषु सूत्रेषु, स्पष्टं श्रीमज्जिनेस्वरैः ॥ १

नरकायुष्यहेतुत्वं, मांसाहारस्य दर्शितम् ।
गती एव नरकायुष्यहेतुत्वं, मांसाहारस्य दर्शितम् ।
नरकायुष्यहेतुत्वं, मांसाहारस्य दर्शितम् ।
नरकायुष्यहेतुत्वं, मांसाहारस्य दर्शितम् ।

आदि निमित्त करते हैं वे हीने मगसती आदि छाछों को भी मांस-पत्रि-
पादक कह कर दूषित करते हैं ॥ १४ ॥

बास्तर में वे स्वयं दोषी हैं और अपने ही दोषों का दूसरों पर आरोपण
करते हैं यही दिसज्जबे हैं—

यह प्रताप विपरीत बुद्धि का फल है, सन् भसन् की
परीक्षा का नहीं। क्योंकि इस प्रकरण में प्राणी-अर्थ किसी भी
प्रकार नहीं पट सकता ॥ १५ ॥

साध को दूषित करने रूप यह प्रताप अपनी दुष्टता को प्रकट
करता है। साध भसत्त्व की परीक्षा से इसका कुछ सम्बन्ध नहीं है।
यह तो निष्ठा बुद्धि का ही परिणाम है। निष्ठावर्ति, सापेक्ष वचनों
के अर्थ को विचार पूर्वक विस्तार नहीं करता। यदि साध-भसत्त्व की परीक्षा
करे तो समस्त अर्थ को छोड़ कर असंगत अर्थ को क्यों स्वीकार करे ?
विप्रेक्ष-बुद्धि वाले को तो प्रकरण आदि का विचार करना चाहिए। कौन
देता है ? कौन लेता है ? किस किष्ट लेता है ? लेने वाले का जीवन
कैसा है ? इन सब बातों पर नज़र रखते हुए ही अर्थ करना चाहिए।
सम्बन्ध से या साध दृष्टि से विचार करने पर इस प्रसंग में मांसाहार आदि
पशुओं का प्राणी का प्राणी का मांस आदि अर्थ नहीं पड़ता है ॥ १५ ॥
न पढ़ने का कारण—

जिनैश्वर भगवान् ने स्थानांग आदि सूत्रों में मांसाहार को
नरकायुष्य का कारण स्पष्ट रूप से बताया है ॥ १६ ॥

प्रासुक-पूषणोप भोजन करने वाले सुनिचों को दो ही गतिर्षी प्राप्त
हो सकती है—मोक्ष अथवा वैमानिक देवगति। भगवान् महावीर
स्वामी को तो मोक्ष ही प्राप्त हुआ क्योंकि वे तीर्थंकर थे। लेकिन मोक्षा-

निर्धार्य यथाकथंचित् शास्त्रस्य-भगवत्त्यादिसूत्रस्यापि
शब्दविशिष्टत्वात्-सदोपत्त्वं-दुष्टत्वं कथापयन्ति-प्रथयन्ति ॥ १३ ॥

वस्तुतस्तु स्वयं दुष्टः स्वदोषानिव परेप्यारोपयतीत्याह—

मिथ्याबुद्धेर्विलासोऽयं, न सदसत्परीक्षणम् ।
प्राण्यर्थो घटते नैव, प्रसंगेऽत्र कथञ्चन ॥ १४ ॥

मिथ्याबुद्धेरिति—अयं प्रलापः शास्त्रस्य न सत्यासत्यपरीक्षात्मकः, किन्त्वयं मिथ्याबुद्धेर्विलासः परिणामः । मिथ्यामतिः सापेक्षवचनानां पर्यालोचनं पूर्वकं नार्थं चिन्तयति । यदि सदसत्परीक्षा स्यात्तदा न विहायासंगतमर्थं न स्वीकुर्यात् । विवेकबुद्धिमांस्तु चिन्तयेत् । कः प्रसंगः, को दाता, को गृहीता, कस्मै कीदृशं यस्य जीवनमिति सर्वमनुसंधायैवार्थं कुर्यात् । सम्प्रदृष्ट्या वा शास्त्रदृष्ट्या चिन्त्यमानेऽस्मिन्प्रसंगे कथमिदं दिश्यानां प्राण्यर्थो-प्राणिमांसाद्यर्थो वा नैव इत्यर्थः ॥ १५ ॥

कथं न घटते इत्याह—

नरकायुष्यहेतुत्वं, मांसाहारस्य दर्शितम् ।
स्थानांगादिषु सूत्रेषु, स्पष्टं श्रीमज्जिनेश्वरैः ॥ १६ ॥

नरकायुष्यहेतुत्वमिति—शामुकैषगीयभोजिनां मुनीनां गती एव भवतः—भोक्षो वैमानिकदेवगतिरिव । तथापि श्री

आदि विहित करने के लिये तैल मगवती आदि शास्त्रों को भी मांस-पशु-पक्ष-पादक कर कर दूषित करते हैं ॥ १३ ॥

वास्तव में वे सबसे दोषी हैं और अपने ही दोषों का दूसरों पर आरोपण करते हैं वही दिव्यतावे हैं—

यह प्रत्याप विपरीत बुद्धि का फल है, सन् असन् की परीक्षा का नहीं। क्योंकि इस प्रकरण में प्राणी-अर्थ किसी भी प्रकार नहीं पट सकता ॥ १५ ॥

शास्त्र को दूषित करने का यह प्रत्याप अपनी दुष्टता को प्रकट करता है। साध-असाध की परीक्षा से इसका कुछ सम्बन्ध नहीं है। यह तो मिथ्या बुद्धि का ही परिणाम है। मिथ्यादृष्टि, सापेक्ष जवनों के अर्थ को विचार पूर्वक चिन्तन नहीं करता। यदि साध-असाध की परीक्षा को तो साधन अर्थ को छोड़ कर असंगत अर्थ को क्यों स्वीकार करे? विवेक-बुद्धि वाले को तो प्रकार-आदि का विचार करना चाहिए। कौन देता है? कौन लेता है? किस जिन् लेता है? लेने वाले का जीवन कैसा है? इन सब बातों पर नज़र रखते हुए ही अर्थ करना चाहिए। सम्बन्ध में या शास्त्र दृष्टि से विचार करने पर इस प्रसंग में मांसाहार आदि प्राणों का प्राणी या प्राणी का मांस आदि अर्थ नहीं पड़ता है ॥ १७ ॥

४ घटने का कारण—

जितेश्वर भगवान् ने स्वानां आदि सूत्रों में मांसाहार को नरकायुष्य का कारण स्पष्ट रूप से बताया है ॥ १६ ॥

प्रायश्चित्त-पक्षोप भोजन करने वाले मुनियों को दो ही गतिर्वा प्राप्त हो सकती है—मोक्ष अथवा वैश्वानिक देवगति। भगवान् महर्षीर स्वामी को तो मोक्ष ही प्राप्त हुआ क्योंकि वे तीर्थंकर थे। लेकिन मांसा-

अन्महावीरस्य तु मोक्षगमनमेव । अथ मांसाहारेण तु
 सम्भवति । तदुक्तम् स्थानांगसूत्रचतुर्यस्याने “वर्द्धं
 जीवा षेरदयत्ताए कम्मं पक्कंति तं जहा—महारंभआए,
 गगहयाए, पंविदियवहेणं, कुणिमाहारेणं” । आदि
 भगवत्पोषपातिकसूत्रयोर्षद्वयमर्याद्भगवत्यष्टमशतकस्य
 तथोपपातिकसूत्रे देशानाधिकारेऽप्येवमेवोक्तम् । नैतदेन
 कमपितु श्रीमग्निनेश्वरैः । नात्र काचिच्छङ्का अपितु
 मित्यर्थः । एवं च मांसाहारस्य नरकायुष्यहेतुत्वं वैकृतं
 एवोत्तमपुरुषाः किं मांसाहारं कुर्युः ? नैव कुर्युरित्यर्थः ॥ १६ ॥

किञ्च—

मांसं निष्पद्यते यत्र, स्थाने तत्र मुनीश्वरैः ।
 यन्मायर्थं न गन्तव्यं, निशोथे तन्निषिध्यते ॥ १७ ॥

मांसमिति—मांसाहारनिष्पत्तिस्थानेऽन्यदशनादिकं
 मुनिनान गन्तव्यमिति निशीथसूत्रे नवमोदेशके निषेधः कृतः
 तथाहि—“जे निवसु रएणो खत्तियाणं जाय भिसित्ताणं मंसस्स
 याण वा मच्छत्थायाण वा धवियक्खत्थायाण वा वदिया
 वा असणं पाणं; स्वादमं, सादमं जाय सादग्गइ” ।
 निष्पत्तिस्थानस्यापि दुष्टत्वं तद्वस्तुदुष्टत्वं स्वभावेनोक्तं, तर्हि
 नस्तु का कथा ? अनेन मांस्याशुद्धत्वं दुष्टत्वं च
 दिवम् ॥ १७ ॥

हार से परक गति होती है। स्थानीय मूल के चौथे स्थान में क्या है—
 भीम बार स्थानी (कार्यों) से परकायु कर्म बाधते हैं—महा भारंभ
 से, महा परिग्रह से, पंचेन्द्रिय जीवों के बल से और कुण्ठिम—मोक्ष को
 आहार से। इत्येक में जो भादि पद दिया है उससे भगवती और भीम-
 पातिक सूत्र का ग्रहण करना चाहिए। अर्थात् भगवती शतक भाठवें के
 नीचे उद्देशक में तथा भीमपातिक सूत्र के देवता अधिकार में भी वही
 बात कही गई है। वह कथन किसी ऐसे-वैसे का नहीं किन्तु भगवान्
 जिनैव का कथन है। भगवान् का वह कथन एकदम स्पष्ट है—इसमें
 दात भी सम्बन्ध जो गुंजाइश नहीं है। इस प्रकार जिनोंने मोक्षाहार
 को परकायु का कारण बताया है क्या वही उत्तम पुरुष मोक्षाहार करेंगे ?
 क्यापि नहीं कर सकते ॥ १६ ॥

और भी—

जिस जगह मांस पकाया जाता हो वहाँ मुनीश्वरों को अन्न
 आदि के लिए भी न जाना चाहिए। निरीप सूत्र में ऐसा
 निषेध किया गया है ॥ १७ ॥

जिस स्थान पर मांस पकाया जाता हो वहाँ मुनि को दूसरा मद्य
 आदि आहार करने के लिए भी नहीं जाना चाहिए, ऐसा निरीप सूत्र
 में उद्देशक में निषेध किया है। वह निषेध इस प्रकार है—जो
 मिश्र मांस, मउली, मुहे हाँके आदि करने वाले राजा या क्षत्रिय का
 भक्षण पान, याग, स्नान, (आहार होता है) उसको भीमासी माधमिच
 है। जिस पदार्थ के दोष के कारण, उसके निष्पत्ति स्थान तक
 भी दूषित माना गया है, उस पदार्थ के दोष का तो क्या ॥ क्या !
 इस उद्देशक से मांस की अशुद्धता और दुष्टता का प्रतिपादन किया
 गया है ॥ १८ ॥

पुनश्च—

उत्तराध्यायसूत्रेऽपि दर्शितं मांसभोजिनः ।

फलं दुर्गतिवन्वादि, दुःस्वर्दाभग्न्यदायकम् ॥ १ ॥

उत्तराध्यायसूत्रे इति—द्वितीयमूलसूत्रे

त्वनेकस्थलेषु मांसाहारकर्तुर्दुःस्वदार्द्रयजनकं दुर्गतिवन्वादि
भवतीति तत्तत्स्थले दर्शितम् । तथाहि—

गायायाम्—

“द्विते बाले मुसायाई, माइल्ले पितुथे सडे ।

भुञ्जमाणे मुरं मंसं, सेयमेयं ति मच्च ॥ ५ । १ ॥

सुरामांसभोजिनो बाजमरणं भवति न तु पंडितमरणं
पालमरणस्य दुर्गतिरेवेति दुर्गतिकलकत्वं मांसाहारस्य दर्शितम्
एवं सप्तमाध्ययने—

“इतिथितयगिडे य, महारम्भपरिगहे ।

भुञ्जमाणे मुरं मंसं, परिहं परदये ॥ ७ । १ ॥

अयककरभोई य, तुदिले थियतोदिए ।

आउय नरण कसं, अहाएत य एलए ॥ ७ । ७ ॥”

अथापि सुरामांसभोजिनो नरकायुष्यबंधकत्वं विस्तारिन्
एवमेवैकोनविंशतितमेऽध्ययने—

“तुह तियाई मंसाहे, सडाइ सोल्लगाणि य ।

सादिमो थितयसाई, अग्निवयणाईंउण्णसो ॥ १८ ॥

रेवती-दान-समालोचना

तिर दो—

द्वाराध्ययन सूत्र में भी मांसभोजी को दुःख और दुर्भाग्य देने वाला दुर्गति का बन्ध आदि फल दिया है ॥ १८ ॥ दूसरे सूत्र में भी दुर्गति का बन्ध आदि फल दिया है, अनेक स्थलों पर मांसाहार करने वाले को दुःख और दुर्गति का बन्ध आदि फल दिया है, ऐसा कहा गया है ।

जो बन्ध आध्ययन को बन्धों का पाया में दिया है—

द्विषत्, घात, मृषागदी, मायाग्री, वृणलसंसार, और शत्रु मनुष्य मादिरा और मांस का भोगना भयस्कर है, ऐसा मानना है । (५-६)

मदिरा-मांस-भोजी का कष्टमान होता है—पण्डित मान नहीं होता और बालकमान से दुर्गति हो जाती है, अनप्य मांसाहार को दुर्गति का कारण नहीं बताया है । यहाँ के आध्ययन में कहा है—

ग्री आदि विषयों में मांसक, महा मारभी, महा परियही, शत्रुओं को पीडा पहुँचाने वाला, मादिरा और मांस का भोग करना दुष्प्राप्त है । (७-६)

यहाँ भी मदिरा-मांस-भोजी को बालकमान का बन्ध होना प्रगट किया है । जहाँ के आध्ययन में कहा है—

“तुम्हें मांस बहुत भिय था ऐसा कह कर परमात्मा ने तुम्हें मेरे ही शरीर के मांस के टुकड़े का सोझा बना कर भोजन कर लिया” । (७-७)

तुह पिया सुरा सीहू, मेरओ य महूणि य ।

पाइओ मि जलंतीओ वसाओ सहिराणि य ॥१६॥ ७॥

सुगापुत्रः स्वमातरं नरकदुःखं वर्णयति । तद्दुःखत्वं

संवाचरितमदिरापानमांसमद्यणत्वप्रयोज्यत्वं दर्शयति ।

पूर्वैर्वचनैर्मदिरापानमांसमद्यणस्यैकान्तदुष्टत्वं प्रतिपाद्यते ॥ १६॥

किंच—

पिशितं भुञ्जमानानां, मनुजानामनार्यता ।

सूत्रे सूत्रकृतांगे त्वार्द्रकुमारेण भाषिता ॥ १६ ॥

पिशितमिति—सूत्रगद्याभिधे द्वितीयेऽत्र सूत्रे

तौ द्वार्द्रकुमारयोः संवादे मांसभक्ष्यस्य कर्मबन्धाहेतुत्वं

तौ द्वार्द्राग्रति वक्तुमार्द्रकुमारः—

“तं भुञ्जमाणा पिशितं पभूतं, खो ज्वलिष्यामो वयं रण्यं ।

इच्छेवमाहंसु अणुज्वधम्मा, अणारिया वात्तरसेसु निदा ॥

जे यापि भुंजति तहप्पगार, सेवान्ति ते पावमजाणमाणा ।

मए न एयं कुमला करोति, काया वि एसा बुद्धया उ मिच्छा ॥२६॥”

पिशितारिनोऽनार्यो बाला रसगृह्य अनायेधर्माण इति

पणवतुष्टयेन मांसभक्षानस्यैकान्तनिन्द्यत्वं वर्णितम् ।

पास्तु तदिच्छामपि ॥ कुर्वन्ति । मांसस्य निर्दोषत्वप्रतिपादनं

वाच्यमपि मिथ्यैवेत्येकसर्वं वर्णनं मांसाहारनिषेधाबालमस्ति ।

ट्टीकाकारेण प्रकृतविषये शास्त्रान्तरीयप्रमाणां न्यप्युपन्यस्तानि वर्ण-

चेमानि—

“मां स भक्षयिताऽमुत्र यस्य मांसमिहाम्यहम् ।

एतन्मांसम्य मासत्वं, प्रयदान्ति मर्मापिणः ॥ १ ॥

योऽति यस्य च तन्मांसमुभयोः पश्यतान्तरम् ।

एकम्य साणिका वृत्तिरन्यः प्राणैर्वियुज्यते ॥ २ ॥

भुत्वा दुःस्वप्नस्वप्नमातिष्ठणा, मांसाशिना इगंति,

ये कुर्वन्ति शुभोदयेन निरति, मासादनस्यादरात् ।

सर्वापांश्चरदपितं गदहया, संभाव्य यास्यन्ति ते,

मायेपूज्यदभोगधर्मवतिष्, स्वर्गापिपयैषु च ॥ ३ ॥

एवमनेकप्रमाणसङ्कायेऽपि विस्तरभवाद् दिङ्मात्रमत्र दर्शितम् ॥ १५ ॥

नन्वाचार्यमद्वितीयस्वरूपकञ्चारी मांसावेमापका अपि पाठाः सन्ति वाप्य

इत्याद्युक्तसाधकप्रमाणं किं न रक्षितव्यं इत्यत आह—

न चाचार्यद्वितीयस्थाः, पाठा मांसार्थसाधकाः ।

यतश्चिन्त्यं तदस्तित्वं विरोधादागमान्तरेः ॥ २० ॥

नेति—आचार्यस्याचार्यगोत्रविधमूत्रस्य द्वितीयप्रत्यक्षस्य

आचार्यद्वितीयः । आचार्यस्य द्वौ प्रत्यक्षकञ्चौ स्तस्वयं यो द्वितीयः

प्रत्यक्षकञ्च इत्यर्थः । नत्र विद्वन्तीति वक्ष्याः । पाठा आचार्यस्य

“से निम्नू वा० आच समर्थे से तं पुण्य आयेताम मंताइय व

“जिसका मांस मैं इन लोक में खाता हूँ, माँ (मुझको)
(वह) परलोक में लायगा । यही मांस ही मांसता है—
‘तू इसीलिए उसे ‘मांस’ कहते हैं ।

“जो जिसके मांस को भक्षण करता है, उनके अन्तर
में देसों—एक की माँ छानिक नृत्ति हाँवी है और दूसरा
‘माँसों से मुक्त होता है’ ॥ २ ॥

“मांस-आँखियों की अत्यन्त घृणास्पद और दुःख देने
वाले दुर्गाते को मुक्त कर जो पुरुष पुरुषोदय में मांस-भक्षण
का त्याग करते हैं, वे दण्डिपु पाते हैं, नरिण्य होते हैं, रूम
और धर्म को प्राप्त करने वाले मनुष्यों में तथा
स्वर्ग और मोक्ष में जाते हैं ॥ ३ ॥

इस प्रकार के अनेक प्रमाण और इसके पर भी विस्तार के अर्थ में
‘दिग्दर्शन’ नाम किया गया है ॥ १९ ॥

आचार्य मूल के द्वितीय अतस्कन्ध आदि में मांसार्थ के साधक पाठ
हैं । आप साधक प्रमाणों की तरह साधक प्रमाणों की वही नही स्वी-
कृत । इसका समाधान—

‘आचार्य’ के द्वितीय अतस्कन्ध का पाठ मांसार्थ को सिद्ध
करता, क्योंकि आगमान्तर के साथ विशेष होने से उन
को का अस्तित्व विचारणीय है ॥ २० ॥

आचार्य के द्वितीय अतस्कन्ध को यहाँ ‘आचार्यद्वितीय’ कहा है ।

‘के दो अतस्कन्ध हैं । इनमें से द्वितीय अतस्कन्ध “ते मित्त-
काय समाने से च पुन आनेय्य मंसार्थ वा मण्ड्यार्थ वा” इत्यादि

मर्यादायं वा.....” इत्यादयः पिण्डेषणाभ्ययनउक्ता न मांसा
साधकत्वेनोपादातुं शक्यन्ते कुतो नेत्याह—यत इति यमाक
णत् आगमान्तरेः—मांसादिनिषेधकैः स्थानाद्भगवतोनिषेध
यागमपाठैः । निषेधान्—आधितत्वात् । ननु द्वितीयभुतस्कन्धस्य
रागमान्तरपाठानामेव आधित्वमस्तु विनिगमनाविरहादिति चेन्न
आचाराद्द्वितीयभुतस्कन्धस्य प्रथमभुतस्कन्धात्परिरेकद्वयं
नियुक्तकारेण बहिरङ्गत्वप्रतिपादनात् । बहिरङ्गविधितोऽन्तरा
विधेर्यत्नीयस्यान्मांसादिपाठानां आधित्वे विनिगमनासक्तत्वात्
तदस्तित्वम्—तेषां द्वितीयभुतस्कन्धगतपिण्डेषणाभ्ययनसम्पत्पाठानां
मरितत्वं सद्भावाः । चिन्त्यम्—चिन्तनीयम् विचारणीयमस्तीति
बहिरङ्गानां तत्पाठानामरितत्वेऽपि सन्नेहास्परे ते पाठाः स्वयमरि
रागमरन्तः कथं मानार्थसाधकाः स्युः ? नैव स्युस्त्वर्थः ॥ २० ॥

आमनसिना न ददर्यं प्रकाशकरणविशेषं ददर्शो—

द्रव्यशुद्धेन दानेन, देवायुर्दमेतया ।

जिननाम च मांसार्थ—करणेऽदो न सम्भवेत् ॥२१॥

द्रव्यशुद्धेनेति—देवतोपायाकञ्चा सिद्धान्तमात्रेण ददर्शम्
एवं दानं दत्तं तस्य प्रभावेण तथा तदानीमेव देवतायावुक्ते कर्ष-
दानाम् एव च यद्विद्युन्मृते तदेव प्रकरणे स्थानाद्भगवतो नान्ये
स्वार्थे च । तथाहि—“तत्पर्यं तोष देवकीय मादावतिजो रतेन
द्रव्यशुद्धेन दानेनानुद्धेन तदस्मिन्नुद्धेन निरकरणशुद्धेन परिहार-
शुद्धेन दानेनानुद्धेन अ-गमादे परिहारादिर समाने देवायु निरुद्धे ।”

भग० १५; १, ५० ६८७ समग्राम् जं भगवतो महात्मन
 त्रित्यंमि जगदि जोगेदि क्रियगरामगोले कम्मे निज
 सेणिएणं, सुधामेणं, उदाउणा, वोदिनेणं अरुगारंणं, इदम
 संभेणं, सयखेणं, सुनमाए, रेवतांए । म्था० ९, मूत्र ११
 ५० ४५५ ।

रेवत्या दत्तं यदि प्राणिमासं स्वात्तशेक्तगढी न संभ
 याताम् । मांसस्याशुठद्रव्यत्वेन दुष्टत्वस्य मरशेव निदर्शना
 किञ्च तार्थङ्कुरनामदेवायुष्ययंघोऽपि न संभवेत् । क
 हारस्य नरकायुष्यहेतुत्वेन म्यानाद्वाही प्रविपादितत्वात् । तथा
 कपोतादिशब्दानां प्राणिमांसार्थभरत्वे स्थांठत्वे द्रव्यशुद्धित्वाव
 नामकमेदेवायुष्ययंघेत्येतन्न संगच्छेत् ॥ २१ ॥

मासायै 'कडए' शब्दम्यानन्वयार्पित म्यादिग्राह—

कडए इति शब्दस्य, मांसे नान्वययोग्यता ।
 न हि निष्पाद्यते मांसं, मार्जारैण कथंचन ॥२२॥
 क्षिन्नं वा भक्षितं तस्य, लक्ष्यार्थः क्रियते तदा ।
 वाक्यार्थासंगतिः स्पष्टा, दातुं योग्यं न तद्भवेत् ॥२३॥

कडए इति—'मज्जारकडए कुक्कुडमांसए' इति वातं
 मार्जारैण कृतमिति वृत्तीयातत्पुरुषे कृते कृतमित्यस्य निष्पादित्वनि
 त्यर्थे मार्जारनिष्पादितमित्यर्थः स्यात् । स च न संभवति । व
 दि रास्त्रादिना मार्जारः कुक्कुडमांसं निष्पादयितुं शक्नोति ।
 वत्सकाशे रास्त्रादीनामभावात् । दंतदंष्ट्रादिकमेव शस्त्रं तेन
 कुक्कुटं क्षिनत्ति भक्षयति वा मार्जार इत्युच्यते तदा

इत्यामोरेण यौवा मूकपाद इत्य प्रकार है—समन्वयस्य ५० महाभाष्यस्य
तथासि यद्वदि जायेहि सिचमरचाप्रभाय अमे निरुक्तिने सेलिद्वज

“...रैवतीदुर्लभं सू० ६९१ सू० ४५५ ।

रैवती के द्वारा दिया हुआ पदार्थ यदि प्राणी का मांस होता तो वह दाह संग्रह नहीं होता क्योंकि मांस असुख इत्य है और इसको असुखता अभी बतलाई जा चुकी है । दूसरा बात यह है कि यदि किसी ने प्राणी-मांस दिया होता तो देवानु का बन्ध और तीर्थक्षरनाम-योग कर्म का बन्ध भी न होता, क्योंकि रक्षानीय आदि मृत्यो में मोक्षद्वार में मरवायु का कारण बताया है । तात्पर्य यह है कि करोत आदि को प्राणी-मांस अर्घ्य का प्रतिपादक माना जाय तो द्वावद्वि और देवानु का बन्ध, यह दोनों बातें बढ़ी बन सकती हैं ६९१ व

मांस अर्घ्य मानन पर ‘कडए’ शब्द का अन्वय—

कडए शब्द का ‘मान’ के साथ संबंध नहीं पड़ता, क्योंकि
‘के द्वारा मांस का निष्पादन नहीं किया जाता है । यदि
‘के द्वारा देना या रखा हुआ, ऐसा ‘कडए’ शब्द का
अर्थ लिया जाय तो वाक्यार्थ की असंगति स्पष्ट हो है ।
पदार्थ दान देने योग्य नहीं हो सकता ॥ २२-२३ ॥

‘मन्त्रादिकं कुम्भक मसृष्ट’ इत्य वाक्य में ‘मात्रोरेण कृतम् (मात्रों द्वारा किया हुआ) इत्य प्रकार मूर्तियों का स्मरण समाप्त करने पर मात्रों-
का अर्थ मात्रों द्वारा निष्पादन, होता है । यह अर्थ असम्भव
क्योंकि मात्रों का आदि से कुम्भक-मांस का निष्पादन नहीं कर
। मात्रों के पास पात्र होते ही नहीं हैं । यदि कोई यह कहे
सक और कहें आदि ही मात्रों के पास हैं और उन्हीं से वह कुम्भक
मांस को निष्पादन करता एवं भक्षण करता है । सो यह व्यसंगिक
और बे बिर पिर का है । क्योंकि ऐसा करने से दान के योग्य हो

स्यम् । तद्वस्तु दानयोग्यमेव न भवेत् । तथा च वाक्योक्तं
नापत्या वाक्यार्थसंगतिः स्पष्टैव । एकापत्तिदूरेकरसंज्ञरागद्वै
समागता तथा च व्याघ्रनदीन्यायप्रसंगः ॥२२॥२३॥

कथं न सानञ्जस्यमित्याह—

मार्जारोच्छिष्टमन्नाद्यं, गृह्यतेऽद्यापि दूषितम् ।

शिष्टाः स्पृशन्ति नैवैतद्, भक्षणस्य तु का कथा २४॥

मार्जारोच्छिष्टमिति—वर्तमानकालेऽपि यदन्नदुग्धारीषं
स्वायवस्तुनि मार्जारेण मुखं निविष्टं तद्वस्तु दूषितमन्नाद्यं नीचवर्ग
रपि मन्यते । शिष्टजनास्तु तत्स्पर्शमपि त्यजन्ति । भक्ष्यं
सुतरामेव त्यजन्ति ॥२४॥

शरीरशब्दप्रयोगोऽपि मांसार्थवाचक इत्याह—

पक्षाद्यङ्गसमष्टिः स्याच्छरीरं भुज्यते न तत् ।

प्रयोगोऽत्र शरीरस्य, मांसार्थवाचकस्ततः ॥२५॥

पक्षाद्यङ्गसमष्टिरिति—‘दुवे कबोयसरीरा’ इत्यत्र शरीर-

शब्देन यदि मांसमेवाधिमत्तं स्यात्तदा ‘कबोयसरीरा’ इत्येव प्रयुज्येत ।
परं य तत्रापि ‘दुवे’ शब्दो बाधितः स्यात्तन्मांसे द्वित्वासंभवात् ।
न च द्वित्वं कपोतेऽन्येति तद्द्वारा तन्मांसेऽन्वय इति वाच्यम् ।
‘दुवे’ इत्यस्य समस्तत्वेन शरीर एवान्वयो घटते न तु कपोते ।
किं च शरीरशब्दस्य मांसार्थकत्वं न संभवत्येव । मांसं तु शरीर-

गतमेकं वस्तु तद्विज्ञानां रुधिरादोनामपि शरीरे हस्ते
 शान् । शरीरव्यवयवो मांसं तु तदवयवः, अरुधिरं
 अनेकावयवसमष्टिरुत्पत्त्यात्तदाह पञ्चायमेति पक्षाः पिच्छा
 आदिराग्नेन चरणचञ्चलादयस्तेषामङ्गानां समष्टिरेव रक्तं
 निष्कादिसहितं पक्षिशरीरे न क्वापि केनचिद्व्युत्पन्नं
 भुज्यते वा मांसमात्रमेव भुज्यते न तु पिच्छादिकम् । तत्र
 शरीरशरीरस्य द्विराप्यस्य च प्रयोग एवात्र मांसार्थे शरीर
 मिद्वयं न तु तत्साधकः । तत्प्रयोगस्य सिद्धान्ते कथं साधकं
 मित्यमेव शरीरविधायकः ॥ २५ ॥

तन्मात्रादभावात् प्रकृतेरपि वा नृकम्—

प्रकृतिविन्न्यसे गुणैरादायौ भरोमयोः

अन्यथा दानतास्थाने, वृद्धी रोगस्य जायते ॥२६॥

प्रकृतिरिति—गुणैर्वैभवेगती रोगप्रवृत्तिरिति । रोगस्य च

प्रवृत्तिः, कः समयः, पुनरप्य कोटशमानवर्षाः, वा प्रवृत्तिरिति
 निरीक्षणानन्तरं कोटशप्रवृत्तिरप्युपपन्नस्य मेरुनमाशोवतनं
 चोदिति मन्वह् पयोऽनोरुच्य नेपथ्यं वसानि गुणैरादायौ रोगस्य
 दाननैरिति । अन्यथा—कृति विज्ञानं विना यद्येवम् रोगस्य
 नम एव दाननिम्नं रोगं निवृत्तिं च-युत दाननस्थाने नृकृतिरेव
 स्वाधिकार मानवनिर्णयनः । अत्र यदा रोगप्रवृत्तिरिति विवक्षितं
 वा-युगल-रोगः । एतन्मन्वनामनिराधिभ्यन्तार कनोऽप्यमाने दुर्भावाः ॥२६॥

ननु मांसमत्र रोगप्रकृत्यनुकूलं किं न स्यादित्याह—

मांसस्योष्णस्वभावत्वात्तस्मात्पित्तप्रकोपनम् ।

वर्चसि लोढिताधिक्यं, तेन स्यान्न तर्दापथम् ॥२७॥

मांसस्येति — शीतजन्यरोगाणामुष्णस्वभावोपधं, रोगप्र-

भवेन्न तु शीतस्वभावोपधम् । एवमुष्णजाजन्यरोगाणां शीतस्वभा-
वधं शान्तिजनकं न तूष्णस्वभावोपधम् । तत्तु प्रत्युत रोगवर्ध-
नेव भवेदिति प्राकृतजनोऽपि जानाति । वैद्यकराष्टसिन्धुभाष्ये
७०१ पृष्ठे मत्स्यराष्ट्रप्रसंगे ७३९ पृष्ठे च मांसराष्ट्र-
मत्स्यमांसस्य साधारणमांसस्य च रक्तपित्तजनकत्वेनोष्णस्वभा-
वत्त्वं दर्शितम् । तथा चोष्णरोगाणां वर्धकमेव मांसं भवति
तुरामकमिति सिद्धम् । श्रीमन्महावीरस्वामिशरीरे पित्तज्वरलो-
पसनदाहानामुष्णव्याधिरूपस्वादुष्णस्वभावमांसेन तेषां वृद्धिः स्या-
द्भानिः स्यादिति निर्णेतुं शक्यत एव, तेनेति पित्तप्रकोपेन लोढि-
धिक्येन च मांसमोपधं कथमपि भवितुं नार्हति । ततोऽग्निमन्यो-
प्रसङ्गे कपोतादिराश्यानां मांसार्थकत्वकरणे प्रसङ्गासांगतिरी-
त्यादिति ॥२७॥

वृत्तिकारस्य श्रीमदभवदेवसूरेण कथमेत्याह इति द्रष्टव्यं—

इत्थं सत्सु प्रमाणेषु, मांसार्थबाधकेष्वपि ।

वृत्तिकारेण तत्पक्षः, किमर्थं नैव स्वरिडतः ॥२८॥

इत्यमितिः—इत्यममुना प्रकारेणोक्तप्रकारेणेत्यर्थः । मांसा-

र्थेति-कपोतादिराश्यानां मांसार्थे तात्पर्यं नास्तीति मांसार्थनिषे-
धाधक्यमाहानि दर्शितानि तेषु प्रमाणेषु विद्यमानेषु व्याख्याकार-

मांस, रोग की प्रकृति के अनुकूल क्यों नहीं है ?

मांस का स्वभाव उष्ण है । उससे पित्त का प्रकोप होता है, जल में रक्त गिरने की अधिकता होती है, अतएव मांस उस रोग की दवा नहीं हो सकता ॥ २७ ॥

सांत-कम्प रोगों की दवाई उष्ण स्वभाव वाली होती है, सांत स्वभाव वाली नहीं । इसी प्रकार गर्मी से जो रोग उत्पन्न हुआ हो उसके लिए सांत स्वभाव वाली औषधि सान्ति जनक हो सकती है, गर्म स्वभाव वाली नहीं । गर्म स्वभाव वाली दवा जो कम्पी रोग बढ़ाने वाली होती है । विषयक चन्द्र सिन्धु कोष पृ० ७७३ में मत्स्य चन्द्र में और पृष्ठ २१९ में मांस चन्द्र के प्रसंग में मत्स्यमांस और साधारण मांस रक्त-रस जनक होने से उष्ण स्वभाव वाला बताया है इससे यह बात सिद्ध है । मांस उष्ण रोगों का वर्धक है, नाशक नहीं । भगवान् महावीर जामी के शरीर में पित्तजनक, रक्तपात और हाह वे सब उष्ण स्वभाव वाले रोग थे, वे उष्ण स्वभाव वाले मांस से बढ़ते या बढ़े बढ़ते । शक्य निर्णय सहज ही हो सकता है । अतः पित्त के प्रकुपित होने या रक्त की अधिकता होने से मांस यहाँ किसी भी प्रकार औषध नहीं हो सकता । इस कारण इस रोग के प्रसंग में करोड आदि ज्यों की तैयारी करने से प्रकृतासंगति होय जाता है ॥ २८ ॥

टीकाकार श्री जगन्मोहन शूरि का अभिप्राय—

इस प्रकार मांसार्थ के वाचक प्रमाणों के मौजूद होने पर भी टीकाकार ने उस पक्ष का खण्डन क्यों नहीं किया ? ॥२८॥

क्योंकि आदि चन्द्र मांस अर्थ के वाचक नहीं हैं, इस प्रकार मांसार्थ निषेध में जो प्रमाण पहले बताये हैं, उनके होने पर टीकाकार का यह आशयक कर्णभ्य था कि वे दूषित पक्ष का प्रमाण एवं उचित

स्यावश्यं कर्त्तव्यमस्ति यद्वाधितपक्षो निराकरणीयः प्रमाणपुरस्सरमागमविस्मयपक्षः स्वसङ्गीयः । अत्र कश्चिद्व्यङ्ग्ये यद् इति कारेण मांमार्थपक्षः कथं न स्पष्टितः ? 'अयमाणमेवार्थं केचिन्मन्त' इति वाक्येन केषांचिन्मांमार्थपक्षः किमर्थमुपन्यस्तः । यदि पूर्वपक्षरूपेणोपन्यस्तः स्यात्तदा तद्वाधनं स्वसङ्गेन किमर्थं न इति मिति प्रश्नकाराशयः ॥२८॥

द्वितीयः-उपस्थाप- —

अन्ये त्वादुरयं पक्षः, किमर्थं नैव स्पष्टितः ।

योग्यायोग्यविमर्शेन, व्याशयः किं न दर्शितः ॥२९॥

अन्य इतिः—कपोतकः पक्षिरिषोपमत्वे ये कपोतं वक्ष्यन्त-
पक्ष्याने कपोते कृमागते तस्य कपोते कपोतके ते च शरीरे
चनन्मनितीरेहस्यात् कपोतकशरीरे, इत्यादिना यन्मात्रार्थं
द्वितीयपक्ष उक्तवान् मांमन्त्यपक्षं न तु स्वसङ्गं । यदि च पक्ष्याः
क्षानिमनन्मर्दि किमर्थं तन्मन्तकन-स्थापनं न कर्त्तुं माधकशपक-
प्रमाणोपस्थाप्यायोग्य-वपयो तोचनेन मांमन्तवापने किमर्थं नित्राशयं
न यद्वदीह्यते ॥३०॥

अत्र उक्तं (१५०-१५१) अत्र न कर्त्तव्यम् —

एतन्मन्तं शून्यकारेण, यद्यप्युक्तं न स्पष्टितः ।

नानाविधायने तस्याशयः सूक्ष्मनिरीक्षणान् ॥३१॥

उपस्थापितः—यद्यपि पक्ष्ये किञ्चिद्व्यङ्ग्ये शून्यकारेण यद्यपि
पूर्वपक्षे केषां चिन्मांमन्तवापनेः किञ्चिद्व्यङ्ग्ये तस्याः शून्यकारेण

। भवपूष यहाँ कोई चोका कर सकता है कि टीकाकार ने उस पक्ष
 सन्देह नहीं किया ? 'ध्रुवमात्ममेवार्थं केचिन्मन्वन्ते' (कोई कोई
 मुने माने उसके अर्थ को मानते हैं) इस वाक्य से किया का मत
 है, ऐसा क्यों कहा ? यहाँ प्रभकर्ता का आशय यह है कि
 इस वाक्य से टीकाकार ने पूर्व पक्ष किया है तो अपनी ओर से
 सन्देह क्यों नहीं किया ? ॥ २८ ॥

दूसरा पक्ष.—

दूसरे लोग कहते हैं कि इस (वनस्पति अर्थ) पक्ष का
 नि मंडन क्यों नहीं किया ? योग्य-अयोग्य का विचार
 करके अभिप्राय क्यों नहीं प्रदर्शित किया ? ॥ २९ ॥

कपोत अर्थात् कबूतर पक्षी, और उसके रंग के समान जिस पक्ष का
 नि वह कपोत पक्ष अर्थात् कोका । क्योंकि कोला में वनस्पति
 होता है अतः उसे कपोत-वारीर कहने हैं । इस प्रकार टीका-
 के जो दूसरा पक्ष किया है वह भी दूसरों का मत बताता है—अपना
 । यदि टीकाकार ने वह अर्थ स्वीकार था तो, साधक-बाधक प्रमाणों
 द्वारा, योग्य-अयोग्य का विचार करके सांसारिक का सन्देह करने में
 मत क्यों नहीं प्रगट किया है ? नास्तिक यह है कि टीकाकार ने
 भी अर्थ दिये हैं अतः के दूसरों के मत के अनुसार दिये हैं । अपना
 से कुछ भी अर्थ नहीं लिखा । इसका क्या कारण है ? ॥ ३० ॥

निवचन-काल का समाधान —

इस विषय में मैं कहता हूँ—यद्यपि टीकाकार ने स्पष्ट शब्दों
 में कुछ नहीं कहा है तो भी सूक्ष्म निरीक्षण करने से उनका
 भाव्य हो जाता है ॥ ३० ॥

इस विषय में मैं कुछ कहता हूँ—यद्यपि टीकाकार ने पूर्व पक्ष का उक्त
 पक्ष के विषय में अपने मन्त्रों में कुछ नहीं कहा है, तथापि पूर्वार्थ का

कोऽभिप्रायो विद्यते, स तु पूर्वापरपर्यालोचनेन ज्ञातुं शक्यते।
पूर्वपक्षस्य कियानादरः कृतः ? उत्तरपक्षस्य च तावदेवादे-
वाऽधिकादरः ? । पूर्वपक्षस्य कियदालोचनपूर्वकार्यावधारणं दर्श-
तमुत्तरपक्षस्य च कियदिति सूक्ष्मरीत्या पर्यालोचने कृते त्वर-
मेव तदाशयपरिज्ञानं स्यादेवेति ॥२०॥

पूर्वोत्तरपक्षयोः किं न्यूनाधिक्यं तदसंपत्तिः—

निर्हेतुकश्च संचितः पूर्वपक्षो न चादृतः ।

द्वितीयो विस्तृतः स्पष्टमुत्तरपक्षलक्षणः ॥३१॥

निर्हेतुक इतिः—भ्रूयमाणमेवार्थं केचिन्मन्यन्ते इत्ये-
वाक्यमात्रेणैव पूर्वपक्ष उन्नयस्तः । नात्र कश्चिद्येतुर्दर्शितः । न
वा साधकबाधकप्रमाणानि । न वा परामर्शः । संचेदेणैव तन्मतो
पदशानं कृतम् । भ्रूयमाणमेवार्थं मन्यन्ते इति वाक्यमपि तत्पक्षस्य
पर्यालोचनशून्यत्वं दर्शयति । कुतः ? सर्वत्र शब्द एव भ्रूयमाणो
भवति नत्वर्थः । शब्दभवणानन्तरमीहा-पर्यालोचना भवति
ततोऽवायोऽर्थावधारणं भवतीति मतिज्ञानस्यायं सामान्यनिवमः । अत्र
त्वर्थस्य भ्रूयमाणत्वमुक्तं तत्कथं पटते । शब्दार्थयोः कश्चि-
भेदाभयत्वेन शब्दवदर्थस्य भ्रूयमाणत्वे स्वीकृते तत्रेहा-पर्यालोचना
व्यापारो न प्रतीयेत । तथा चात्र मांसार्थो पटते वा न पटते
शास्त्रान्तरे तद्वाधकप्रमाणानां सद्भावेन बाध्यतेऽत्र मांसार्थो नयेति
पर्यालोचनाविरहेण न यथार्थाभायस्तत्र संभवति । शब्दवदर्थः

विचार करने से यह निश्चित हो जाता है कि टीकाकार का क्या विचार है? उन्होंने पूर्व पक्ष (मीमांसार्थ पक्ष) को कितना स्वीकार किया है? और उत्तर पक्ष (वनस्पति-अर्थ) को उतना ही या उससे अधिक किया है? कितनी आलोचना करके पूर्व पक्ष के अर्थ का किया है और उत्तर पक्ष के विषय में कितनी आलोचना की है? इस प्रकार सूत्र्य रीति से विचार करने पर उसका भावबल बकर मालूम हो जाता है। ॥ ३० ॥

पूर्व पक्ष और उत्तर पक्ष की अनुपातिकता—

पूर्व पक्ष को संक्षेप में कहा है और कोई हेतु नहीं दिया, परन्तु पूर्व पक्ष को उन्होंने स्वीकार नहीं किया किन्तु उत्तर पक्ष विस्तार में और स्पष्ट रूप से बताया है ॥ ३० ॥

‘अथमात्रमेवार्थं केचिन्मन्यन्ते’ (गुने जाने वाले अर्थ को ही कोई है) इस एक वाक्य के द्वारा ही पूर्व पक्ष का निर्देश कर दिया है। इसमें कोई भी हेतु नहीं दिखाया और व साधक-बाधक प्रमाण ही है। इसका कुछ परामर्श भी नहीं दिया। बहुत संक्षेप में ही यह मत दिखा दिया है। ‘अथमात्रमेवार्थं मन्यन्ते’ यह वाक्य भी उत्तर पक्ष को विचार सूक्ष्मता का निर्द्देश करता है, क्योंकि अर्थ कही गुना नहीं जाना—सम्यक् ही सर्वत्र गुना जाता है। ‘सम्यक् गुनने के वाद ईहा—पर्यालोचना (विचार) होता है। ईहा के अनन्तर अभाव होता है और सब अर्थ का निश्चय होता है। मतिज्ञान का यह सामान्य नियम है। अगर यहाँ अर्थ का गुना जाना कहा है तो यह ईहे सीक हो सकता है? सम्यक् और अर्थ सर्वथा भिन्न नहीं है—कथञ्चिद् अभिन्न है अतः यहाँ अनेक की अपेक्षा से अर्थ का गुना जाना कहा है। यदि ऐसा मान लिया जाय तो उसमें ईहा नहीं होगी यदि। देखी दृष्ट्य में ‘मीमांसार्थ गुण है या नहीं, दूसरे शास्त्रों में मीमांसार्थ के बाधक प्रमाण का सर्वभाव है अतः यहाँ

श्रुतः । न पर्यालोचनपूर्वकमवधारित इति तात्पर्यं प्रकृतवान्स्व-
 स्तीति पूर्वपक्षे वृत्तिकारस्य न सम्यगादृष्टः प्रतीयते । किं च
 श्रूयमाणोऽर्थ इत्यपि स्पष्टं नोक्तम् । अथ द्वितीयपक्षस्तु वितर्क-
 म्पष्टमुक्तः स चोत्तरपक्षरूपेणोपन्यस्तः । तत्र पूर्वपक्षस्य सदस्य-
 रत्वेनोत्तरपक्षज्ञानविशिष्टत्वम् ॥३१॥

उभयपक्षयोर्द्वितीयस्य प्राधान्यं दर्शयति—

शून्यैतया द्वितीयस्य प्राधान्यं स्वीकृतं स्वपम् ।

प्रथमस्य च गौणत्वं, स्थापितं व्यङ्ग्यहेतुतः ॥३२॥

शून्येति—एतयोपरिदर्शितया शून्यया पूर्वपक्षत्वोत्तरपक्ष-
 संक्षिप्तत्वं विस्तृतत्वनिरादरत्वसादरत्वनिर्हेतुकत्वसहेतुकत्वप्रतिपाद-
 गर्भितरश्च नात्मकयः । रीत्या । द्वितीयस्य वत्तत्पर्यं स्वीकुर्वतो द्वितीय-
 पक्षस्य वृत्तिकारेण स्वयं प्राधान्यं स्वीकृतम् । सांसार्यं तात्पर्यमा-
 कस्य प्रथमपक्षस्य च गौणत्वं स्थापितम् । कुत इत्याह व्यङ्ग्यहेतु-
 पक्षम्यन्तराभ्यात्मकहेत्वदर्शनेऽपि स्वमनोभावगतहेतोरित्यर्थः । य-
 वृत्तिकारस्याशयः प्रथमपक्षस्वीकारे स्थापना ■ द्वितीयपक्षप्रथ-
 पक्षमपि विस्तरेण हेतुपूर्वकं स्पष्टं स्थापयेत् । तथा नोपदर्शितम्
 तेन च उक्त्याशयः स्पष्टं ज्ञानुं शक्यते धीमद्विरित्यलं विस्तरेण ॥३२॥

वृत्तिकारस्य स्पष्टाशयः—

किञ्च स्थानाद्भूतिकायामनेनैव निजाशयः ।

फलार्थे दर्शितः स्पष्टं नात्रातः पुनरोरितः ॥३३॥

टीकाकार का भाष्य केवल अनुमान-रूप ही नहीं किन्तु स्पष्टान्तर में स्पष्ट उल्लिखित भी है अर्थात् स्थानाद् नामक मृत्वीय अद्भुत सूत्र के नवम स्थान की टीका में भगवतो टीकाकार अभयदेव मूर्ति ने ॥ कुम्भकुटमोक्षादि अद्भुत फलप्राप्तक है, मोक्षार्थ वाचक नहीं है ऐसा अपना भाष्य स्पष्ट प्रगट किया है। जैसे कि "तुलसी में जो और रेवती नामक गुरुपत्नी ने मेरे लिए जो दो कुम्भाभ्य (कोश) के कुछ संस्कार करके तैयार किए हैं—इससे प्रयोजन नहीं है किन्तु उसके घर में दूसरा माता-पिता का वायु को निरुद्ध करने वाला कुम्भकुट मोक्षक अर्थात् विजयता—यह का गर्भ है यह ले आ; उससे हमारा प्रयोजन है।

(स्थानाद्सूत्र—नवम स्थान सू० १९१, ५० ५५१ ५५२) इस से टीकाकार ने भगवतो की टीका में फिर यही बात नहीं बतलाई। कि स्थानाद् सूत्र की टीका पहले बतलाई गई है और यहाँ पर यही बात स्पष्ट बतलाई गई है अतः यहाँ पर पुनरुक्ति करने में नहाना इस कारण यहाँ से अनुसम्भाव करने का टीकाकार का है न ३३ ॥

उक्त शब्दों के वनस्पति अर्थ की सिद्धि—

अथ इन शब्दों की वनस्पति अर्थ की वाचकता में स्व-पर के स्पष्ट प्रमाण दिखलाये जाते हैं ॥ ३४ ॥

अथ सप्त का अर्थ है—इसके अनन्तर। अर्थात् मोक्षार्थ पक्ष का करने के अनन्तर प्रकृत पक्ष वनस्पति-अर्थ के वाचक है, यह बात भी जाती है। इन शब्दों का वनस्पति अर्थ विषय के मुख्य भाग में तथा पंचक कोष में प्रसिद्ध है। जैन ग्रंथों में भी कहीं-कहीं अर्थ पाया जाता है। अतः सर्व पक्ष के हिमायतिनों के लिए प्रमाण-

एतेषां शब्दानां वृत्तद्वनसरतिवाचकत्वं नैव कपुस्तके मुश्रुतादौ वैद-
कोपे च प्रसिद्धमस्ति । तथा जैनसूत्रेऽपि कवित्तयाति । अ-
पूर्वपक्षिणं प्रति स्वशास्त्रस्य प्रज्ञापनादेः परशास्त्रस्य मुश्रुतत्वं
प्रमाणानि प्रामितिजनकवाक्यान्युद्धृत्य प्रदर्श्यन्त इत्यर्थः ॥३४॥

प्रथमं कपोतशब्दायोः निकृष्यते—

पारावतः कपोतधामरे पर्यायतः स्थितौ ।

पारावतस्तरुः सिद्धः, कपोतोऽपि तथा भवेत् ॥३५॥

पारावन इति—‘दुवे कवोयसरोरा’ इति प्रथमवाक्ये
‘कवोय’ (प्राकृते)—कपोत (संस्कृते) शब्दः प्रयुक्तः । कपोतश्च
पारावतशब्दस्य पर्यायतयामरकोपे द्वितीयकारण्डे निगदितः ।
तथाहि “पारावतः फलरवः कपोतोऽथ शरावनः ।” (पट्टि० १०१६)
पर्यायत्वाद्योऽर्थः पारावतशब्दस्य स एवार्थः कपोतशब्दस्याऽपि
भवितुमर्हति । अथ पारावतशब्दस्य तु पक्षिवाचकत्वं प्रसिद्धमिति
चेद् वृक्षवाचकत्वस्यापि प्रसिद्धत्वात् । तथा हि मुश्रुतसंहितायां
३३८ श्लोके—फलवृक्षप्रकरणे—“पारावत समधुरं रुच्यमस्यग्निवाक-
सुत्” पारावतवृक्षस्य मुश्रुतेऽनेकस्थलेष्वेवात्तस्य वृक्षत्वं सिद्धमेव ।
तव एव कपोतस्यापि पारावतपर्यायत्वाद् वृक्षत्वं सिद्धमिति ॥३५॥

कपोतपुन्दर्य द्वितीयार्थः—

शब्दसिन्धो कपोतेन, पारीशोऽभिहितस्तरुः ।

पारीशेन पुनस्तत्र, प्लवटवृक्षो निरूपितः ॥ ३६ ॥

शब्दसिन्धो—वैद्यकरान्दसिन्ध्याख्यकोपे १९३ श्लोके कपोतेन—

कपोतशब्देन पारीशः पारीशनामकस्तृक्षः वृक्षोऽभिहित इत्यर्थः । पुनश्च तत्रैव पुस्तके ६०१ पृष्ठे पारीशेन पारीशशब्देन प्लक्षवृक्षो निरूपितः कथित इत्यर्थः । वनौषधिदर्पणारण्यनुसारेण ४४७ पृष्ठे पश्यतामिदं प्लक्षवर्णनम्—

“प्लक्षः—Ficus infectoria.

A large deciduous tree. Astringent and cool.

प्लक्षः कपायः शिशिरो, वणयोनिगदापहः ।

‘दाहपित्तकफामघ्नः, शोधहा रक्तपित्तहृत् ॥”

तथा च कपोतशब्दाच्च प्लक्षवृक्षस्य दाहपित्तनाराकत्वं संभवत्यत्र तदुपयोगः । शरीरशब्दस्य तूभयत्र वृक्षात्मकराशरीरशब्दस्य फले लक्षणाकरणेन भवति निर्वाहः ॥ ३६ ॥

कपोतस्य पाठान्तरत्वेन तृतीयोऽयं—

यश्चा प्रागत्र काबोर्द, कवोयश्रुतिमागतः ।

इत्स्वत्वं च यकारश्च, स्थानसाम्यात्प्रमादतः ॥ ३७ ॥

यदेति—अथवा शरीरशब्दस्य शक्तिभावेण निर्वाहः स्यात्-
तादृशं यदि प्रकारान्तरं संभवति तदा तदरांतीयमित्यतः प्रकारान्तरदर्शनापेक्षमः । अत्र अस्मिन्प्रकरणे प्राक्—सूत्राणां सुल्ल-
कागोहणानुपूर्व धृत्यनुभूतिप्रवाह आसीत् । गुरुः शिष्यमभाषयत्
पुनर्भाषित्ययमिति कस्यपि कर्णभ्रवणपरंपरायां देशविशेषोच्चारण-
भेदः, भूतिभेदश्च संभवत्येव, वर्तमानेऽपि तथा दृश्यते । तथा
प्राक् धृत्यनुभूतिसमये काबोर्द—काबोर्दत्याकारकराब्दः कवोयश्रु-

कपोतराम्नेन पारीशः पारीशनामकस्तुः पृष्ठोऽभिहित उक्त
इत्यर्थः । पुनश्च तत्रैव पुस्तके ६०१ पृष्ठे पारीशेन पारीशाम्नेन
एतदपृष्ठो निरूपितः कथित इत्यर्थः । यनीपथिर्पृष्ठाख्यपुस्तके
४४० पृष्ठे परव्यामिर्दं एतदुपलक्षणम्—

“अशः—Ficus infectoria.

A large deciduous tree. Astringent and cool.

पातः कपावः शिशिरो, नणयोनिगदापहः ।

• दाहसिक्तकामघ्नः, शोधहा रक्तपित्तहृत् ॥”

तथा च कपोतराभ्याम्यजसृग्धस्य दाहविसृजनाकारवेन
मंजरा यत्र नृणांयोगः । शरीरशब्दस्य नृभवस्य पृष्ठममकशरीरेकार-
वत् कपोतपुष्पाकारेण भवति निर्दोहः ॥ ३६ ॥

६३. ११४ ॥ ३३-३४. ४१ ॥ लोकादये —

यत्रा वागव काचोर्दं, कवोगधुनिषामतः ।

इत्यर्थः च पकारश्च, व्यानसाभ्यात्पवादतः ॥ ३७ ॥

पदोक्त—यत्रा शरीरशब्दस्य शक्तिमात्रेण निर्दोहः स्यादं,

दाहमं वांश्च दाहान्तरं मंजराणि तथा वरसंजीवयित्वाः प्रका-
रान्तरादिभिरुक्तः । अथ चमिकन्त्रकारेण वाक्—गूयागा गुल्फ-
कारादिभिरुक्तं च नृणांयोगाद् भाषीत् । गुल्फः शिरःपथमाश्रित्य
गुल्फादिभिरुक्तं कर्मादिभिरुक्तं स्यादप्यस्य वेदादिभिरुक्तं पार-
वत्, नृणांयोगस्य मंजरावेत्, मंजरावेत्तं तथा हरयोः । तथा
च नृणांयोगस्य काचोर्दं-काचोर्दं वाकारकशब्दः कवोगधुनि-

सम्ब का दूध (पाश्च) वायक वृक्ष अर्ध कहा है : वनीचधिरुपेव नामक पुस्तक के दृष्ट ५२० पर दूध का वर्णन इस प्रकार दिया है—

आम—Ficus infectoria

A large deciduous tree. Astringent and cool

'लघु कसैला, शीतल, मधु और योनि के रोगों का नाशक, दाह, पित्त तथा कफ का मिटाने वाला, शीथ रोग और रक्तपित्त का नाशक है ।

इस प्रकार कसेल सम्ब का पाश्च दूध वृक्ष दाह और पित्त का नाशक है अतएव सम्भव है इसका उपयोग किया गया हो । इस दाह पर सम्ब, सो चक्र, वृक्ष कफ दाहों का एक अणुपण होता है और सम्भव है कि इस में वृक्ष अर्ध डीक बैठ जाता है ४३१३

पाठान्तर से वर्णन का तीसरा अर्थ—

अथवा इस पाठ में पहले कावाँई शब्द होगा जो 'कवोय' ऐसा सुना गया होगा । इस 'क' और 'ई' की जगह 'य' प्रमाद से हो गया होगा, क्योंकि इनके व्याकरण स्थान एक ही हैं ॥ ३७ ॥

दाहों पर सम्ब का प्रयोग जालि से ही युक्त हो जाए, वेना कोई प्रकार यदि हो सकता है तो बताएँ ? ऐसी भावना होने पर दूसरा प्रकार दिखाते हैं । पुस्तक कर में विविध होने से परके मूर्तों में धृति-अनु-धृति की परम्परा थी । गुरु अपने शिष्य को मूर्त सुनाता था और वह शिष्य फिर अपने शिष्य को सुनाता था । इस प्रकार कानों का मूर्त सुनने की परम्परा होने पर देश के भेद से उच्चारण में और भूति में भेद होता सम्भव है । वर्तमान काल में भी यह बात देखी जाती है । अतः भूति अनुभूति की परम्परा के समय 'कावोई' सम्ब 'कवोय' ऐसा सुना गया । दाहों के लिखने की प्रजापति महर्षीर न्यायी के निर्वाच से १८० वर्ष अतीत हो जाने पर आरंभ हुई थी । उसमें पहले और उसके पश्चात्

लेन भूमिमानतः—भक्त्यायं प्रकृतः । लेखनयुक्तिः । मरु-
 तेषां तन्निमित्तोन्मयसादृशोचरिजनसादृशोऽपि व्यवहारेण ज्ञातः ।
 कतः दूरे सखादृशि आनेके साक्षाः पादन्तरतो गता दृश्यन्ते
 तद्दृश्यमपि आसौदंसात् कस्येव तेन परिकृतः स्वादिष्टं नास्ती-
 त्वात् । कथं किं वाद स्थानसादृश्याद्—इकारस्य यकारस्य च
 सङ्गः । तत्कालेन आकारस्याकारस्य च कलत्रस्थानादनेन साध्यादा-
 कालसाकारेण, इकारस्य च यकारस्येन भूनिवधत्, अथवा लेख-
 कस्य वनादालोक्यारि कालावधत् । तथा च 'दूरे आसौदंसी-
 ताश्च' इति नृणां क मन्थमाने सखीरसादृशक न लक्षणावयवमत्र
 ६० देवजी-दान-महालोचना ॥ ३० ॥

कलत्रस्थानादनेन साध्यादाकालसाकारेण

कलत्रस्थानादनेन साध्यादाकालसाकारेण

कलत्रस्थानादनेन साध्यादाकालसाकारेण

कलत्रस्थानादनेन साध्यादाकालसाकारेण
 कलत्रस्थानादनेन साध्यादाकालसाकारेण
 कलत्रस्थानादनेन साध्यादाकालसाकारेण
 कलत्रस्थानादनेन साध्यादाकालसाकारेण
 कलत्रस्थानादनेन साध्यादाकालसाकारेण
 कलत्रस्थानादनेन साध्यादाकालसाकारेण
 कलत्रस्थानादनेन साध्यादाकालसाकारेण
 कलत्रस्थानादनेन साध्यादाकालसाकारेण
 कलत्रस्थानादनेन साध्यादाकालसाकारेण
 कलत्रस्थानादनेन साध्यादाकालसाकारेण

कलत्रस्थानादनेन साध्यादाकालसाकारेण

कलत्रस्थानादनेन साध्यादाकालसाकारेण



समाधान—हाँ है। त्रिनेत्र भगवान् ने सूत्र में कहा है कि वन-
रे वाय को भौतिक श्रृंखला कार्यय यह तीन भंग होते हैं। अतएव
आदि में सरोर वायु का प्रयोग करना अनुचित नहीं है। ईदक
में भी वनस्पति के पत्र पुष्प फल आदि को भंग कहा है, अतएव
ही वायु के साथ सरोर वायु का समाख सार्थक है और 'ह' वायु
प्रयोग भी पुनियुक्त है ॥१९॥

कूम्भाण्ड फल हो विच का नाण्ड विशेष रूप से प्रतिद है, अतः वही
को अर्थ कथो न लिया जाय ? सो कहते हैं—

वास्तव में तो यहाँ जैसा शब्द इस समय सुना जाता है,
को आम-वाक्य से तथा शक्ति-मह से कूम्भाण्ड अर्थ ही
प्रतीत होता है ॥२०॥

वर्षा पारावत, श्रृंखला भीर कपोतो, विच भीर शब्द के वाचक हैं,
भी जवपुर निरासी श्रीकृष्णशामरां भारि दीर्घों की सम्मति के अनु-
द्वय रोग में कूम्भाण्ड फल हो अधिक उपयोगी प्रतीत होता है।
। निमित्त रूप से कल-पूर्वक कहते हैं कि—इस प्रकार में, वर्तमान-
कीन दुस्तो में 'दुवे कपोत खरीदाओ' ऐसा ओ देका भीर सुना जाता
हो इस वाक्य में आये हुए 'कपोतखरी' (कपोत) शब्द का कूम्भा-
(कोला) अर्थ ही वास्तविक ज्ञात होता है।

संज्ञा—'कपोत खरीदा' शब्द का कूम्भाण्ड अर्थ किसी भी रूप में
सुझ नहीं है, ऐसी हालत में यह अर्थ कैसे हो सकता है ?

समाधान—अंग के बिना भी व्याकरण तथा भास वाक्य आदि से
क प्रत्यय व्यावसाय में प्रसिद्ध है। सिद्धान्तमुक्तावली (कारि-
वली) के १०८३ में कहा है—

व्याकरण से, उपमान से, कोश से, आसवाक्य से, व्यवहार
, वाक्यशेष से, विवरण से, तथा सिद्ध पद के सम्बन्ध से
कि प्र महण होता है।

देवकी-दान-समालोचना

हाँ पर अग्न बाह्य से दृष्माण्ड में प्रकट होना है। भा
 शीनता है। इस प्रश्न का समाधान यह है कि टीकाकार ने द्विती
 को बताने काका जो बाह्य टीका में दिया है, वही भातवाह्य है
 भी है—“अन्ने त्वाहु—कपोतकः—पक्षिविशेषस्तद्देव से कसे वर्ण
 मांसे करोते—दृष्माण्डे हन्ने कपोते कपोतके से का लं शरीरे वनस्पति
 तावाद् कपोतशरीरे, अथवा कपोतशरीरे दृष्ट भूतारवर्णसाधर्म्यादेव
 ताशरीरे—दृष्माण्डकमे प्वा”
 यदि इतने से भी सुतोच न हो तो कपोतशरीर (कबूतर के शरीर)
 की समानता के कारण दृष्माण्ड कल में इसकी कक्षा करना
 । कक्षा भी दण्ड की एक शक्ति है और उससे भी अर्थ की
 वि होती है। दृष्माण्ड के गुण यैवक साध में प्रसिद्ध हैं। कहा भी है—
 उनमें धाल और मध्यम दृष्माण्ड पित्त नाशक, कफ
 ने वाला होता है। पका हुआ दृष्माण्ड लघु, उष्ण है,
 सहित दण्ड और वस्ति को शुद्ध करता है।

—सुभुत संहिता १० ३१५

दृष्माण्ड शीतल, पौष्टिक, स्वादिष्ट, पाकरत, भारी,
 कारक, रुक्ष, दस्तावर, कम्प उत्पन्न करने वाला, कफ वर्षक
 र वातापिच का नाशक है। दृष्माण्ड का शाक भारी है,
 मपात ज्वर, आम, सूजन तथा अग्निदाह को मिटाने वाला है।

—कैयदं वनिपयदु १० ११४

इसमें यह अर्थ प्रकट होता है कि दृष्माण्ड का शाक उष्ण और दाह
 यान्न करता है अतएव जो दृष्माण्डों का शाक व्यवहार देवकी ने
 का था ॥ ३० ॥

मञ्जार शब्द का अर्थ—

प्रज्ञापना सूत्र के प्रथम पद में तथा भगवती सूत्र के श्लोकों में, मञ्जार शब्द वनस्पति के अर्थ में प्रयुक्त है ॥ ४१ ॥

कोई-कोई यह कहते हैं कि टीकाकारने अपर-मुख में जो कहा है वही मञ्जारनामक वनस्पति है ॥ ४२ ॥

प्रज्ञापना नामक उपाहृत सूत्र के प्रथम पद में तथा भगवती नामक अंग सूत्र में के श्लोकों में एक में 'मञ्जार' शब्द वनस्पति अर्थ में है । भाग्योदय समिति द्वारा प्रकाशित भगवती सूत्र के पृष्ठ ९ में इस प्रकार पाठ है—“अम्बसदृशोवाग्निमितामृतं दुर्लभं मङ्गलं वायु-राममञ्जारपोद्भिस्तिका” इत्यादि । प्रज्ञापना के प्रथम पद में इस के अर्थ में “वायुस्योवाग्निमितामृतं दुर्लभं मङ्गलं वायु-राममञ्जारपोद्भिस्तिका” ऐसा पाठ है ।

वहीं टीकाकार ने भवना और मेमाञ्जरी शब्द का अर्थ नहीं किया है । द्वितीय पक्ष के अन्तर्गत ‘दूरी कहते हैं’ ‘अम्ब शीघ्र कहते हैं’ इस से ही अन्तर्गत पक्षों के मुख में ‘मञ्जार’ शब्द की व्याख्या की है । इन प्रकार है—

“दूरी कहते हैं कि माञ्जरी अर्थात् एक प्रकार की वायु उठे शान्त के लिए जो किया गया—पकाया गया—हो, वह माञ्जरीकृत ।’ कोई कहते हैं कि माञ्जरी अर्थात् विशालिका नाम की एक वनस्पति, उसके द्वारा किया—पकाया—गया ॥ वह ‘माञ्जरीकृत’ । वहीं दो अन्तर्गत पक्ष । पहला पक्ष माञ्जरी शब्द की वायु-विशेष का नामक मायार है और पक्ष कहना है कि माञ्जरी का अर्थ विशालिका नामक वनस्पति है । अम्ब-मन्त्र के टीकाकार ने जो विशालिका नामक वनस्पति बताया है (विशालिका) इस प्रकार में माञ्जरी शब्द का वास्तव अर्थ है ।

श्रीगुरुदेव ॐ नमो नमो

श्रीकान्त ।

प्रसङ्गे मञ्जारराब्दवाच्यत्वेनाभिमतता वनस्पतिः तस्याः प्रकृतोपयोगित्वात्तथाहि-शब्दार्थचिन्तामणिचतुर्थभागे ३२२ पृष्ठे-“विडाली-
स्त्री भूमिकूष्माण्डे ।” वैद्यकराब्दसिन्धौ ८८९ पृष्ठे-विडालिका-
स्त्री भूमिकूष्माण्डे ।” कैयदेवनिघण्टौ ३९७ पृष्ठे-“४६७ विदा-
रीद्वयम् (विदारी. स्त्रीरविदारी च)

Ipomea digitata

A large perennial creeper

Tuberous root demulcent

Nutritive, aphrodisiac and

lactagogue

(हि) विदारीकन्द, विलाई कंद,

(व) भूर्दे कूमडा,

(म०) भूर्दे कोइला

(गु) भोकोलु

विदारीजुविदारी स्यात्स्वादु कन्दा विदारिका ।

कूष्माण्डकी कन्दवल्ली वृक्षकन्दा पलाशकः ॥१३६७॥

गजवाजिप्रिया वृष्या वृक्षवल्ली विडालिका ॥ इत्यादि

विदारी वृंहणी वृष्या सुस्निग्धा शीतला गुरुः ।

मधुरा मूत्रला स्वर्गा स्तन्यवर्णवलप्रदा ॥१४०१॥

पित्तानिलासदाहघ्नी जीवनीया रसायनी ॥”

इत्यादि ॥ ४१ ॥ ४२ ॥

रक्तचित्रकुरुपस्य मञ्जारराब्दवाच्यत्वेऽपि प्रकृतानुपयोगित्वम्—

शब्दसिन्धौ लुपे प्रोक्तो, मार्जारो रक्तचित्रके ।

नास्ति तस्योपयोगित्वं, प्रकृते प्रातिकूल्यतः ॥४३॥

शब्दसिन्धौ इति-वैद्यकराब्दसिन्ध्यात्यकोपे । मार्जारः—

प्राकृतमञ्जारराब्दस्य संस्कृतज्ञायारूपमार्जारशब्दः । रक्तचित्रके—

की इस प्रसंग में उपयोग है। चारुधरचरितार्णव, अनुषंग भाग, पृष्ठ १२२ में कहा है—“विदारी (आ)-भूमिदृष्यान्ते।” विषय चरितार्णव . ८०९ में लिखा है—“विदारीका—(कार्तिक) भूमिदृष्यान्ते।”
 ऐव विषय पृष्ठ २९० में लिखा है—

४९० विदारी द्वयम् (विदारा, विदारीका च)

<i>Humex digitata</i>	(हिन्दी) विदारीकन्द, विदारीकन्द
<i>A Large perennial creeper</i>	(बंगला) भूईंमहा
<i>Tuberous root of malva</i>	(मराठी) भूईं कोइला
<i>Nutritive, aphrodisiac & lactagogue</i>	(गुजराती) ओंकोलु

विदारी, इधुविदारी, स्वादुकन्दा, विदारीका, कन्माडकी, रुन्दवल्ली, पृष्ठकन्दा, पलाराक, गजवाजिपिया, वृष्या, वृषा-
 तल्ली, विदालिका, इत्यादि विदारी के नाम हैं। १३२७।

विदारी, वृहिणी, पीष्टिक, सिन्ध, शीतल, गुरु, मधुर
 मूत्र पैदा करने वाली, स्वर को सुन्दर करने वाली, दूध, रूप,
 और बल का बढ़ाने वाली है। पित्त, वायु तथा दाह नाशक
 और जीवनी रसायन है। इत्यादि ४१-४२

रक्त चित्रक नामक छोटे पेड़ का मज्जार शुद्ध का वाष्प घानना प्रकरण
 अनुषंगी है—

वैद्यक शब्द सिन्धु नामक कोष में प्राप्त भाषा के मज्जार
 शब्द की संस्कृत छाया रूप मानकर शब्द, रक्तचित्रक नामक छोटे
 पेड़ के अर्थ में कहा गया है।

रक्तचित्रकामिधे चुपे —चवुडवे पोक्तः—अयिनः । तथादि—
 “मार्जारः—गुं, रक्तचित्रकशुपे. रा. नि. व. ६ । पृष्ठितारिकायान् ।
 वै. निष. । विडालं, अम. । छट्टारो. हे. च. (कः) मयूरे त्रिका ॥”
 पृ. ७४७.

“रक्तचित्रक—गुं. (*Plumbago rosea* or *coccinea* syn. *P. rosea*) रक्तवर्णदण्डपत्रचित्रकशुपे । गुणाः—स्यौत्थकः
 रुच्यः कुष्ठजः रसनियामकः लौहबंधकः रसायनः चित्रकान्तराद्-
 गुणाद्व्यञ्ज । रा. नि. व. ६ ।” पृ. ७८९.

प्रकृते—प्रकृतपत्रके रक्तातिसारपित्तशरदरोगरमन्त्रे ।
 तस्य—रक्तचित्रकशुपस्य । उपयोमित्वं—उपयोगः । नास्ति—न
 विद्यते । कुतो नेत्याह—प्रातिकूल्यतः रागप्रकृतेः प्रतिजोमत्वा-
 द्रोगस्योष्णस्वभावात्तदास्याप्युष्णस्वभावत्वात् ॥ ४३ ॥

कडपशब्दाय.—

कडप् इति शब्दस्तु, संस्कृतभाषितार्थकः ।

बहर्थत्वेन धातूनां, वृत्तिकारेण दर्शितः ॥ ४४ ॥

कडप् इति—कडप् इत्यस्य कृतक इति ज्ञाया । क्व
 एव कृतकः । स्वार्थे क प्रत्ययः । टीकाकारेणैव कृतशब्दस्य
 संस्कृतं भाषितमित्यर्थद्वयं निरुक्तम् । करणार्थक-कृषावोः
 संस्कारभावनार्थकत्वं कथं स्यादित्यत आह बहर्थत्वेनेति—धातू-
 नामनेकार्यत्वादिति व्याकरणशास्त्रे प्रसिद्धम् ॥ ४४ ॥

कुक्कुटशब्दाय.—

कुक्कुटः सुनिपण्णारूपे, शाके शान्मलिपादपे ।

कुक्कुटी मातुलुङ्गेऽपि, मधुकुक्कुटिका तथा ॥ ४५ ॥

यह दस प्रकार—

कार्यः—पु० एक चित्रक ध्रुवे पु० वि० व० ६ । पुनिमारिकायाम्
 वि० वि० । विशाखे, अम० । कदाचि. हे च (क) मयूरे त्रिका. पु० व०
 वहाँ रत्नानिधाय, चित्र उग्र और दस रंग के प्रसंग में रत्नचित्रक
 प्रकट होती हैं । क्योंकि यह रत्न की प्रकृति से प्रतिबिम्ब है,
 और रत्न का रत्नभाव भी उज्ज्वल है और दस रत्न का रत्नभाव भी
 है ॥ ४३ ॥

कउए शब्द का अर्थ—

धातुओं के अनेक अर्थ होते हैं, अठग्व टोकाकार ने 'कउए'
 शब्द के संस्कार किया हुआ और भावित किया हुआ, ऐसे दो
 अर्थ हैं ॥ ४४ ॥

'कउए' यह प्राकृत भाषा का शब्द है । इसका संस्कृत भाषा में
 'कउ' रूप होता है । इस की कृत् । वहाँ सार्धक में 'क' प्रत्यय
 भा है । टोकाकार ने ही कउ शब्द के 'संस्कार' तथा 'भावित' से
 अर्थ किये हैं ।

संक्ष—ह धातु का अर्थ 'कना' है । ऐसी दशा में उससे संस्कार
 भाषा का अर्थ कने के सकते हैं ।

समाधान—प्रत्येक धातु के अनेक अर्थ होते हैं, यह बात व्याकरण
 शास्त्र में प्रतिबिम्ब है ॥ ४५ ॥

कुम्कुट शब्द का अर्थ—

कुम्कुट शब्द का अर्थ मुनिपण्य नामक शाक-वनस्पति और
 मूल का पृथ, होता है । कुम्कुटी तथा मधुपुम्कुटिका का
 अर्थ है मातुलिग- (बिजौरा) । टोकाकार के मत से बिजौरे

वृत्तिकाराशयात्तस्मिन्, कुक्कुटोऽपि प्रवर्तते ।
 स्वस्तिकस्योपयोगेऽपि, मांसशब्दो निरर्थकः ॥ ४६ ॥
 शान्मलेः फलवच्चेऽपि, नात्र तस्योपयुक्तता ।
 मातुलुङ्गं तु सार्थक्यं, सर्वथास्तस्तदाश्रयः ॥ ४७ ॥

त्रिभिः कुलकम् ।

कुक्कुट इति—‘कुक्कुडमंसण’ इत्यग्रापकुक्कुडशब्दस्य संस्कृतच्छाया कुक्कुट इति भवति । कुक्कुटशब्दस्यानेकार्थकत्वेऽपि शाकट्टकागर्थकत्वमत्रोपयुक्तमिति तदेव दर्शयति । कुक्कुट इति कुक्कुटेत्याकारकः शब्दः सुनिषण्णशब्दे स्वस्तिकाभिधेः शाके व्यञ्जनोपयोगिवनस्पतिविशेषे शान्मलिपादपे—शान्मलिनामस्यावे वृत्ते वर्तते इति शेषः । तथाहि—वैद्यकशब्दसिन्धौ २५९ पृष्ठे ।

“कुक्कुटः—(कः) । पुं । सुनिषण्णशके । भां. पू. १ भ. शाकव. । सुण सुणा रान्माठ इति कोकूणे । शान्मलि वृत्ते ।”

कैयदेव निघण्टौ १४६ पृष्ठे—

“१६५ सुनिषण्णकः (शितिवार)

Marsilea Quadrifolia	}	(हिं) शिरोआरी, चौपातया	
A four-leaved aquatic hot-herb		}	(बं) शुपुनिशाक. (म) फरह
Cool, diuretic and astringent			(गु.) उटीगण, चतुष्पत्री
	}	हरितक. चीत, मूत्रल, मादी	

सुनिषण्णः सूचीपत्रश्चतुष्पत्रो वितुचकः ।

श्रीवारकः शितिवारः स्वस्तिकः कुक्कुटः शितिः ॥

अर्थ में कुक्कुट शब्द का भी प्रयोग होता है । स्वस्तिक
मुनिपण्य) यहाँ उपयोगी होता है परन्तु मांस शब्द निरर्थक
है । सेमल के वृक्ष में यसरि फल होते हैं परन्तु वह इस
में उपयोगी नहीं है । हाँ, मातुलिम (विजोरा) सब
प्रकरण में उपयोगी है अतः उसी अर्थ का आश्रय लेना
हिए ॥ ४५-४६-४७ ॥

‘कुक्कुटमंसप’ इस पर में भाष्य कुक्कुट शब्द की संस्कृत प्राप्ति
है । कुक्कुट के अनेक अर्थ होते हैं, केचित्त इस प्रकरण में
का दूध अर्थ ही उपयोगी है, अतः उहीधे दिखवाते हैं ।

कुक्कुट शब्द मुनिपण्य अधोर् स्वस्तिक नामक पत्रत्रय उपयोगी
है के अर्थ में है और उसका दूसरा अर्थ कास्मालि (सेमल) का दूध
होता है ।

वैद्यक शब्द सिन्धु (पृष्ठ २५९) में लिखा है—

“कुक्कुट (क) पु० । मुनिपण्य शाब्दे । भा. पृ. १ म. काठव.
७ । रात्र्याह इति शब्दोक्त । कास्मालि वृक्षे ।”

कैवर्देव निघण्टु पृष्ठ १४९ में लिखा है—

१५ मुनिपण्यकः (चिनिवार)

quadrifolia.	}	(दि.) चिरांभासे, चौरातवा
Four leaved aquatic hot-herb		(बं.) सुमुनिवार,
and, diastolic and anagrost,		(म.) करदू
		(पु.) उदीगल, चतुष्पत्री, इतिवत् लीन, सूचक, माही ।

मुनिपण्यक, सूर्यपत्र, चतुष्पत्र, विनूनक, धाधारक,

, रसार्त्तिक, कुक्कुट, सिति, शूसा, धावत, ये मुनि-

चागेरिपत्रसहरापात्रः शूल्या च वायसः ॥ ६३३ ॥”
शालिग्रामनिघण्टुभूषणं ८७८ पृष्ठे—

“सुनिपण्णकनामानि—

सितिवारः सितिवरः स्वस्तिकः सुनिपण्णकः ।

श्रीवारकः सूर्यपत्रः पर्णाकिः कुक्कुटः शिर्षी ॥

अथ गुणः—

सुनिपण्णो लघुमाही वृष्योऽग्निघ्नः प्रदोषहा ।

मेधारुचिप्रदोदाहजरहारी रसायनाः ॥”

वैद्यकशब्दसिन्धौ १९२ पृष्ठे—

“शात्मलिः—पुं. स्त्री । Bombax malabarica. Syn. Belmalica malabarica स्वनामख्यातमहातरौ । गुणाः

वृष्यो बल्यः स्वादुः शीतः कपायो लघुः स्निग्धः शुक्ररत्न-
वर्धनश्च । तद्रसगुण एव माही कपायश्च । तत्सुष्यफलमपि
तत्समगुणमेव । रा. नि. व. ८ । तत्सुष्यं घृतसैन्धवसाधितं
प्रदरघ्नं रसे पाके च मधुरं कपायं गुरु शीतलं माही वातलश्च ।
भा. पू १ भ. शाकव. । कृमिमेहघ्नं रुचमुष्णं पाके कटु लघु
वातकरुघ्नश्च । सु. मू. ४६ अ ॥”

कुक्कुटीः—कुक्कुटीत्याकारकः स्त्रीलिङ्गवाची कुक्कुटशब्दः ।

तथा—एवं मधुकुक्कुटिका—मधुकुक्कुटीत्याकारकः शब्दः ।

मातुलुङ्गे—मातुलुङ्गापरपर्यायवोजपूरकवृक्षे वर्तते इति शेषः । अपी-
त्यनेन सुनिपण्णादिग्रहणम् । मधुकुक्कुटिकेत्यत्र मध्विति विशेष-
ण्ये दूरीकृते कुक्कुटिकेत्यवशिष्यते । कुक्कुटीशब्दस्यैव कप्रत्यये
हस्ये च कृते कुक्कुटिका संपद्यते । तथा च तयोः पर्यायत्वं संभ-

के नाम है चंगरी के पत्र समान इसके पत्र होते हैं ।

शारिद्राम निषण्ड भूषण पु० ८७८ में लिखा है—

“मुनिपण्यक के नाम”

सितिवार, सितिवर स्वास्तिक, मुनिपण्यक, भीवारक, पिंज, पण्यक, कुक्कुट, शिखी ये मुनिपण्यक के नाम हैं ।

मुनिपण्यक के गुण—

मुनिपण्यक लघु, माही, पौष्टिक, आग्निवर्धक, त्रिदोष-
मेघा और रुचि को बढ़ाने वाला, दाह उररनाशक,
रसायन है ।

वैद्यक सार सिन्धु पु० १५२ में कहा है—

“साधुसौंठः—पु० छा० । *Bombax malabarica* syn.

.ca malabarica. स्वभास्वदातमहातमी । गुणः । गुण—

पक्व, वलकारक, रजसिद्ध, शीत, कषेण, हृद्य, विनाश, कीर्ष और
को बढ़ाने वाला है । माही और कषेण उमके रस के ही गुण हैं ।

कृष्ण और कक के गुण उन्ही के समान हैं । जो और लम्बक में साधा
रुक्त पुष्प प्रदर को लास करता है, रस तथा वाक में मधुर, कषाण,
शीतल, माही तथा वातकारक है । (भा. पू. १ म. शाक ४)
तथा प्रमेह वा मादाक, कृष्ण, उष्ण, वाक में कटु, कषु, वात और
को हारने वाला है । (सु. पू. १६ म.)

पुष्पकुटी, पुष्पुट सार वा स निगमास्य सार है और दधी मवार
पुष्पुटस्य सार कोकपूरक (विजोस) पुष्प वा पचापपापी है ।

अरि सार में मुनिपण्य आदि का उल्लेख किया है । ‘मपुष्पुटिका’
में से ‘मपु’ विशेषण द्वारा दो तो ‘पुष्पुटिका’ से प्राप्त है और
सार से क माचक करने पर और प्राप्त करने पर ‘पुष्पुटिका’

वति । तेन मधुकुङ्कुटिकावत्कुङ्कुटोऽशब्दस्यापि मानुषुङ्गार्यकत्वं
कोपसिद्धमेव । तथाहि-वैद्यकसञ्ज्ञसिन्धौ—

“कुङ्कुटो—पुं । कुङ्कुमपक्षिणि । तदण्डाकारकन्दे ।
मं । स्त्री । Silk cotton tree. शास्त्रमलिवृक्षे । रा. नि.
ब. ८ । भा. पू. ४ भ. मूत्राष्टकवर्ते । शितशरके । वा.
उ. ५ अ । अकटवृक्षे । उरुचटामूलं । उरुचटा महुलिङ्गो स्यात्सैवोक्तं
कुङ्कुटो षड्वित् ।” रत्ना ॥” (२५९) पृष्ठे) ।

“मधुकुङ्कुटिका—(टो)—स्त्री । मानुषुङ्गवृक्षे, जम्बोरभेदे ।
महुर इति भाषा । गुणा—‘मधुकुङ्कुटिका शीता, रसोऽमृतास्य-
प्रसादनी । रुच्या स्वादुर्गुरुः सिग्धा, वातपित्तविनाशिनो ॥
राज. ३ प ॥” (२०८ पृष्ठे)

“मानुषुङ्गः—(कः) । पुं । (Citrus medica)
खीलवृक्षे । हि. विजौरा । गुणाः—

‘स्थान्मातुलुङ्गः कफरातहन्ता कृमिणां वडरामयजः ।

स दूषितरकविच्छागपित्तसन्दीपनः शूलरिफारहारी ॥”

वत्सलगुणाः—आमक सास्रविहर तृष्णाप्लं कण्ठशोथनम् ।

दीपनं लघुतृप्यम् मातुलुङ्गमुदाहृतम् ॥”

(पृष्ठ ७४३)

मुश्रुतसंहितायां ३२७ पृष्ठे—“विजौरा—

आमकासारविहरं, तृष्णाप्लं कण्ठशोथनम् ।

लघुतृप्यं दीपनं हृद्यं, मातुलुङ्गमुदाहृतम् ॥

प्रदूषण जाता है। अतएव वे एवाचवाची ही सधन हैं। इस कारण वे मधुकुक्कुटिका सप्त्र का अर्थ विज्रीता है उसी प्रकार कुक्कुटो सप्त्र का अर्थ भी विज्रीता कोष से सिद्ध है।

वैद्यक सप्त्र सिन्धु से कहा है—

“कुक्कुटो—पु० । कश्चुमयश्चिन्ति । तद्वशाकारम्भे । म० ।
 १ । Silk Cotton Tree कावमणिकुक्षे । वा० नि० व० ८ । भा० पु०
 म० मूत्रादकर्मके । चित्तिवारके । वा० व० ५ अ । ककटकुक्षे । उच-
 त्कुक्षे । ‘उच्यते बहुलिङ्गो स्वात् संयोगा कुक्कुटो वचनिच्’ । रसा ३ ”
 (पृष्ठ २५९)

मधुकुक्कुटिका—(टी)—छी । मातुलिङ्ग वृक्ष, जम्बीरभेदे ।
 हर इति भाषा । गुणा—मधुकुक्कुटिका शीता, दक्षेष्मकास्य प्रसादनी ।
 १५१ दशगुणैः सिताया, यातारिचविनातिनी य सत्र, १ ५, ॥”
 (पृष्ठ ३०८)

मातुलिङ्गः—(क) । पु० । (*Latex medica*) कोष्ठगत वृक्ष
 ६० विज्रीता । विज्रीते के गुण—

विज्रीता कफ और वात को नाश करने वाला, पेट के
 कीड़ों का नष्ट करने वाला, दूषित रक्त विकार मिटाने वाला है।

मातुलिङ्ग पत्र के गुण इस प्रकार है—

रसात सासी, तथा अस्थि को नष्ट करने वाला, गृध्या
 का नाशक और कण्ठ को शुद्ध करने वाला दारुण, लघु एवं
 सार्वकारक है।

गुणत सारिका पु० ३१०, “विज्रीता”—

मातुलिङ्ग श्वेत, सोमो और अस्थि को हरने वाला, तृषा
 बुझाने वाला, कण्ठ शुद्ध करने वाला, लघु सहा, दारुण तथा
 सार्वकारक होता है।

स्वकृतिका दुर्जगा तस्य, वातकुमिच्छपहा ।

स्वादु शीतं गुरु स्निग्ध, मांसमास्तपित्तजिते ॥

ननु कुक्कुटशब्दस्य मातुलुङ्गार्थकत्वेऽपि कुक्कुटशब्दस्य तु तत्र सिद्धमिति चेदाहवृत्तिकाराशयादिति—कोपं विनाऽऽत-
वाच्यदितोऽपि शक्तिमहो भवतीति । दर्शितमेव कुक्कुटशब्देन
मातुलुङ्गापरनामधीनपूरकार्यबोध एव वृत्तिकारस्याशयः । तथा
'कुक्कुटमासकं' धोजपूरकम् । (भग० आगमो० समिति
६९१ पृष्ठे)

तथा च तदभिप्रायेण कुक्कुटोऽपि कुक्कुटशब्दोऽपि तस्मिन्
मातुलुङ्गार्थे प्रवर्तते राक्त्यैव बोधजनको भवतीत्यर्थः । एवं च
'कुक्कुट' शब्देन त्रिषु वनस्पत्यर्थेषूपस्थितेष्वपि विशेषेणात्र कस्योप-
योग इति दर्शयति । स्वस्तिकस्येति—सुनिपयणकापरपयां-
शितिवारशाकस्य दाहभ्यरहारित्वेनात्रप्रसंगे । उपयोगेऽपि—
वपयुक्तत्वेऽपि मांसशब्दो निरर्थकोऽर्थं शून्यत्वेनानुपपन्नः स्यादिति
शेषः फलगर्भस्येवात्र मांसत्वेन स्वस्तिकस्य तादृशफलवत्त्वाभावात् ।
शान्मलेः—स्यनामख्यातमहातरोः फलवत्त्वेऽपि मांसविशिष्टफल-
सङ्गावेऽपि । अत्र-अभिन्मप्रकरणे तस्य—शात्मलिकलस्य
नोपयुक्तता—नोपयोगो भवति पित्तशहातनिवारकत्वान् ।।
मातुलुङ्गेतु—धीजपूरककले मांसात्मक-गर्भसङ्गावाप्तस्य च
विचादिदोषनिवारकत्वेन दर्शितवान् । सर्वथा—सर्व प्रकारेण,
सार्थवयं साध्यम् । पूर्वोक्तप्रकाराभ्यामस्य विशेषदोषदर्शनार्थं

इसकी छाल तिकत और कठिनता से पचने वाली होती है। यह रात, कृमि और फफ को नष्ट करती है। उसका स्वाद, शीतल, गुरु, स्निग्ध, वायु और पित्त को जीतने है।

सर्प—कुक्कुट सार्व का अर्थ विजोता हुआ, ऐक्य यह सिद्ध नहीं कि कुक्कुट सार्व का अर्थ भी विजोता है।

समाधान—कोर के बिना भी भास-वाक्य आदि से सम्प्रार्थ का है। यह पहले ॥ दिखाया जा चुका है कि कुक्कुट सार्व से शकार का भासव विजोरे से हो है, जिसका दूसरा नाम मातुमुत्र भी है। यह इस प्रकार कुक्कुट मौसक—बीजपूरकम् (भग० भागवत- १११ दृष्ट)

इस प्रकार शकार के मत के अनुसार कुक्कुट सार्व भी बीजपूर वाक्य है। यहाँ कुक्कुट सार्व से गीन वनस्पतियों का अर्थ होता है, से इस प्रकार से विशेष रूप से जिसको उपयोगिता है, यह बातें। सुनिषण्ण नामक चित्तिकार साक राह-अर का सातक होता है। यह इस प्रसंग में उपयोगी है, क्योंकि यदि यह अर्थ दिया तो मांस सार्व अर्थ हो जाता है। क्योंकि चक्र के गूरे को यहाँ मांस सार्व से कहा है मगर चित्तिकार के चक्र जैसे (गूरेरा) नहीं होने अर्थ सार्वमल (सेमक) है। सेमक के चक्र ॥ गूरा भी होता है। यह इस प्रसंग में उपयोगी नहीं है क्योंकि यह पित्त-दाह आदि का नाशक नहीं होता। अरु रह गया विजोता, तो उसके कर्णों में गूरा भी होता है। और यह पित्त आदि रोगों का निवारण भी करता है, इस कारण यही सब प्रकार से उपयुक्त है। यही कारण है कि प्रकरण के

तु शब्दः । अतः—अस्मात्कारणान् तदाथयः—मातुड्वत्-
दृतीयार्थस्यैवाश्रयः कृता द्वयार्थो मिहाय तृतीयोऽर्थः समारक-
प्रकरणानुरोधेनेति भावः ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ ४७ ॥

मीमांसदायो निकृष्यः—

मांसशब्दस्य शक्तिस्तु, पिरडीभूतं रसे मत्ता ।

फलगर्भोऽपि तद्रूपो, दृश्यते प्राणिमांसम् ॥ ४८ ॥

त्वद्मांसकेशगणां च, लक्षणानि पृथक् पृथक् ।

वाग्भटं वैद्यके ग्रन्थे, दर्शितानि गुणैः सह ॥ ४९ ॥

मांसशब्दस्येतिः—‘कुम्कुडमंसप’ इत्यत्र ‘मंसप’ इति

शब्दस्य द्वाया मांसकमिति पुल्लिङ्गान्तु प्राकृतत्वान् । कप्रत्ययः
स्वाधिकः । मांसशब्दस्य पिरडीभूते रसे रसपिरडे रक्तज-
दृतीयधातो वा शक्तिः प्राणिशरीरे यथा रसपिरडीभावो भवति
तथा वृक्षफलादावपि रसपिरडीभावो भवत्येवात आह तद्रूपः
रसपिरडरूपः । प्राणिमांसफलगर्भयोः क्वचिदूर्णेनापि सादृश्यं
दृश्यते । ततो मांसशब्देन फलगर्भोऽपि गृह्यते । तदुक्तं
प्रज्ञापनायाम्—“वेदं मंसकडाहं एयाहं हवन्ति एगजीवस्स । घृन्तं
समंसकडाहं वि । स मांसं सगिरं तथा कडाहं एतानि त्रीण्येकस्य
जीवस्य भवन्ति एकजीवात्मकान्येतानि त्रीणि भवन्तोत्यर्थः ।
(पञ्चयणा, बाबु. पद. १ पृ. ४०) ॥” एवं वाग्भटे (सु. स्था.
अ. ६. श्लोक १२९—१३१)—

मातुलुगस्य त्वद्मांसकेशराणां पृथक्पथोपदर्शनात् पृथगेव गुराणाह—

त्वत्कृत्तिकटुका स्निग्धा मातुलुगस्य वाताजित् ।

बृहत् सधुरं मांसं वातपित्तहर गुरु ।

ते से कुरकुर चर के मोन वनरवति-भयो में से पूर्वोक्त दो को
; कर तोसरे बिजौरे भय का आशय लिखा है ॥ ४५-४६-४७ ॥

मांस शब्द का अर्थ—

रस का पिण्ड, मांस शब्द का अर्थ है । फल का गर्भ (गूरा
गैरी) भी प्राणी के मांस की तरह उसी प्रकार का देखा
जाता है ॥ ४८ ॥

वाग्भट्ट नामक वैद्यक ग्रंथ में, त्वचा, मांस, और केसर के लक्षण,
उनके गुणों के साथ, तुरे-तुरे बताये हैं ।

'बृहत्संहिता' पर में 'मंस' इन प्राकृत शब्दों की संस्कृत प्रायः
'मांसकम्' होती है । स्वार्थ में 'क' परवच हुआ है । मांस का अर्थ है
रस का पिण्ड अर्थात् रस से उत्पन्न होने वाला तीसरी धातु । जैसे
प्राणी के शरीर में रस का पिण्ड होता है उसी प्रकार फल वगैरह में भी
होता है, इसलिये मांस को रस-पिण्ड रूप कहा है । कहीं-कहीं प्राणी
के मांस और जल के गूरे में रंग की भी समानता देखी जाती है, इसलिये
मांस शब्द में फल का गूरा अर्थ भी लिखा जाता है । अष्टाध्याय सूत्र में
कहा भी है—“वेदं मांसकदाहं इवाहं इति एतमीरस्य ।” अर्थात्
एक जीव के दूध, मांस सहित गूरा सहित, और बटाई, वे तीन होते
हैं, अर्थात् ये तीनों एक जीव रूप हैं । (वसव्याचार, पद १ सू. ४०)
इसी प्रकार वाग्भट्ट में (देखिये मृ. रथा. अ. ५. श्लोक १२९-१३१)
बिजौरे की त्वचा, मांस और केसर का दृषक्-दृषक् उपयोग देखा जाने
में इनके गुण भी दृषक्-दृषक् कहे हैं—

मातुलिग का छाल तिष्ठत, कहुषी, स्निग्ध, तथा वात-
नाशक है । मातुलिग का गूदा पुंल्ल, मधुर, पाठापिपनाशक
एव गुरु है । उसकी केशर सप्त है, आस सासी, से हुवा रोगो



गतदिननिष्पादितः । तस्या रेवतीगृह्णिष्या गृहे विद्यत इति शेषः ।
 तं—बीजपूरकगर्भम् । आनय—स्वमिति शेषः ततः—प्रथमरात्र्या-
 न्तरं द्वितीयवाक्येन चोर जिनः सिंहं प्रति इत्यवकू-इत्यमवद-
 दिति—“अस्थि से अन्ने पारियासिण मञ्जारकडण कुक्कुड मंसण
 समाहराहि” भग० १५; १, पृ० ६८७ इत्येनद् द्वितीयवाक्य-
 स्याद्यं समुदायार्थं इति ॥ ५१ ॥

दोषनिरोद्धरसमाह—

अस्मिन्नर्थे न काप्यस्त्य—नुपपत्तिर्न दूषणम् ।

न चागमाविरोधोऽपि. सर्वं संगच्छते ततः ॥ ५२ ॥

अस्मिन्निति—मांसार्थे ‘बुधे सरीरकडण’ इत्येतेषां प्रयाणां
 शब्दानामन्वययोग्यतानुपपत्तिः नरकादिगतिप्राप्तिः स्वर्गाद्यप्राप्तिरपि
 दूषणं मांसाहारनिषेधकानामागमवाक्यानां विरोधश्च । इत्येवं
 ये ये दोषा मांसार्थे संभवन्ति तन्मध्याद्वनस्पत्यर्थे नैकोपि दोषः
 संभवति । ततस्तदर्थे सर्वं संगच्छते सर्वथापि संगतिरस्ति । न
 मनागप्यसंगतिरनुपपत्तिर्वातीति भावः ॥ ५२ ॥

उपसंहार —

मांसार्थपरिहारेण, वनस्पत्यर्थसाधनात् ।

रेवतीदत्तदानस्य, पूर्णशुद्धिर्विनिश्चिता ॥ ५३ ॥

मांसार्थपरिहारेणेति—रेवतीदत्तदाने याथातथ्यं परोक्षितुं
 प्रारब्धेऽस्मिन्नप्यन्धं पूर्वापरसम्बन्धपूर्वकं शब्दार्थपर्यालोचनायां
 क्रियमाणायां मांसार्थनिराकरणेन वनस्पत्यर्थसाधनेन च रेवतीदत्त-
 दानं नाशुद्धं किन्तु पूर्णशुद्धमिति सप्रमाणं निश्चितमिति ॥ ५३ ॥



५४ निर्दिष्टतोऽवगाह—

आगमोद्धारसंस्थायाः, मिलितानां मभासदाम् ।

परस्परमविशेषेण, नातोऽप्यपर्यन्तिनयः ॥ ५४ ॥

आगमोद्धारसंस्थाया इति—भां अत्रमेराठयरत्तने मायु-
सम्मेलनप्रमद्वे शास्त्रपयां नोचनकृते स्थापिता याऽऽगमोद्धारमिति
स्तस्याः सभासदः प्रतिनिधिषां गत्युपस्थाययुगभायं पूज्यप्रमोत्तस-
थापिप्रभृतयः । ये मंत्रति जयपुरपत्तने विराजन्ते शास्त्रपयां तोच-
नार्थं मिलितानां तेषां परस्परविशेषेण—परस्परं विहितशास्त्रपयां
लोपनेन अयं—प्रकृतनिबन्धगतार्थनिर्णयः कृतः साधित
इत्यर्थः ॥ ५४ ॥ प्रशस्तिः

खनिर्घ्यंकधरावर्षे, माघशुक्लाष्टमीतिथौ ।

भौमे भारतविरुपाते, जयपुराख्यपत्तने ॥ ५५ ॥

पूज्यगुलाचचन्द्राङ्गप्रधम्बुनपरागसेविना ।

रत्नेन्दुना निबन्धोऽयं, निर्मितो मुक्तयेऽस्तु नः ॥ ५६ ॥

खनिर्घ्यंकधरावर्षे इति—खं शून्यं निधिर्नव अहो नव
धरा चैका । अष्टानां वामतो गतिरिति १९९० मितं वर्षे—विक्र-
माब्दे माघमासशुक्लपक्षस्याष्टमीतिथौ भौमे मंगलवासरे भारतवर्ष-
प्रसिद्धे जयपुराख्ये पत्तने लिम्बडीसम्प्रदायस्थाचार्यवरस्य पूज्यभी-
गुलाचचन्द्रजित्त्वामिनश्चरखकमलरजःसेवकेन रत्नचन्द्रमुनिना
विरचितोऽयं निबन्धो नोऽस्माकं सर्वेषां च मुक्तये कल्याणायान्तु
भवत्विति लेखकभावना ॥ ५५—५६ ॥

नभोऽङ्गनिधिमूर्धे, माघकृष्णदशमि ।

पञ्चम्य-मृजुटीकेयं, स्वोपज्ञं पूर्णतां गता ॥ १ ॥

मित्र प्रचार निमित्त हुआ, सो करते हैं—

भागमोदर समिति के एकत्रित हुए सभासदों के परस्पर
॥ से यह अर्थ निमित्त हुआ है ॥ ५४ ॥

अबसे नगर में साधुसम्मेलन के अवसर पर छाकों की पर्यालोचना
के लिए भागमोदर समिति स्थापित हुई थी। उसके सभासद
गणों, श्री आत्मारामजी उपपाध्याय, श्री काशीरामजी गुप्ता-
, एम्ब जी अमोलक कविजी, आदि को कि इस समय जबपुर नगर
विराजमान है, परस्पर मिले भीर उन्होंने छाक की पर्यालोचना द्वारा
निर्णय किया है ॥ ५५ ॥

विक्रम संवत् के तिथि अंक घरा छ (१९९०) की माघ
के शुक्ल पक्ष की अष्टमी, मंगलवार के दिन, भारवर्ष
प्रसिद्ध जयपुर नगर में, संवत् रत्नचन्द्र मुनि ने यह निबंध
॥ यह निबंध हमें और समस्त प्राणियों को कल्याणकारी
॥ यह लेखक की भावना है ॥ ५५ ५६ ॥

टीकाधार की प्रशंसा

संवत् १८८० में के माघ शुक्ल पक्ष की के दिन यह शीघ्र सरल टीका
हुई ॥ ५७ ॥

विजली से चलनेवाला अजमेर में बहुत बड़ा प्रेस खुल गया

आदर्श प्रेस, अजमेर

उमदा काम, समय की पावन्दी और मुनासिब रेट
हमारे खास विशेषताएँ हैं ।

संस्कृत, हिन्दी, उर्दू व अंग्रेजी का सब तरह का काम हमारे
यहाँ बहुत सुन्दरता से किया जाता है । मूक-संशोधन
का भी प्रबंध है, कागज़ का स्टॉक भी रहता है ।

किताबों व पत्र पत्रिकाओं के छापने का खास प्रबन्ध है ।

जैसी माहों से प्रार्थना है कि ये अपनी छपाई का सब काम अपने
एस जैन प्रेस में ही भेजने की कृपा करें ।

निवेदक—जीलमल लूथिया, सयाबक-भादर्श प्रेस.

पता—आदर्श प्रेस, अजमेर.

(केसरगंज बाइबलाने के पास)

आदर्श पुस्तक-भण्डार

आदर्श प्रेस के मकान में ही यह पुस्तक भण्डार खुला
है । हिन्दुस्थान भर में मिलनेवाली सब प्रकार की हिन्दी
की उत्तमोत्तम पुस्तकें हमारे यहाँ मिलती हैं । सत्ता-साहित्य
मण्डल के राजपूताना ग्रन्थ के हम सोल एजन्ट हैं ।
अरलील या मनुष्य-जीवन को गिरानेवाली पुस्तकें हम नहीं
बेचते । बड़ा सूचीपत्र मुफ्त मंगाएँ ।

पता—आदर्श पुस्तक-भण्डार, केसरगंज, अजमेर.



कथं निश्चितोभयमाह—

आगमोद्धारसंस्थायाः, मिलितानां सभासदाम् ।

परस्परमविशेषेण, जातोऽयमर्थनिश्चयः ॥ ५४ ॥

आगमोद्धारसंस्थाया इति—श्री अजमेराख्यपत्तने साधु-

सम्मेलनप्रसङ्गे शास्त्रपर्यालोचनकृते स्थापिता याऽऽगमोद्धारसमिति-
स्तस्याः सभासदः प्रतिनिधियो गण्युवाच्यायुवाचार्यपूज्यश्रमोत्त-
मपिप्रभृतयः । ये संप्रति जयपुरपत्तने विराजन्ते शास्त्रपर्यालोच-
नार्थं मिलितानां तेषां परस्परविमर्शेण—परस्परं विहितशास्त्रपर्या
लोचनेन अर्थं—प्रकृतनिबन्धगतार्थनिर्णयः कृतः साधित
इत्यर्थः ॥ ५४ ॥ प्रशंस्तिः

स्वनिर्घ्यंकधरावर्षे, माघशुक्लाष्टमीतिथौ ।

भौमे भारतविरूपाते, जयपुराख्यपत्तने ॥ ५५ ॥

पूज्यगुलावचन्द्राङ्गप्रथम्वुजपरागसेविना ।

रत्नेन्दुना निबन्धोऽयं, निर्मितो मुक्तयेऽस्तु नः ॥ ५६ ॥

स्वनिर्घ्यंकधरावर्षे इति—स्वं शून्यं निधिर्नव अष्टौ त्रय

धरा चैका । अष्टानां वामतो गतिरिति १९९० मिते वर्षे—विक्र-
माब्दे माघमासशुक्लपक्षस्याष्टमीतिथौ भौमे मंगलवासरे भारतवर्ष-
प्रसिद्धे जयपुराख्ये पत्तने लिम्बडीसम्प्रदायस्याचार्यवरस्य पूज्यभी-
गुलावचन्द्रजित्स्वामिनश्चरणकमलरजःसेवकेन रत्नचन्द्रमुनिना
विरचितोऽयं निबन्धो नोऽस्माकं सर्वेषां च मुक्तये कल्याणायस्तु
भवत्विति ज्ञेयकभावना ॥ ५५—५६ ॥

नभोऽङ्गनिधिपूर्वर्षे, माघकृष्णदशम्यां ।

पद्मम्पद्मजुटीकृतं, स्वोपज्ञं पूर्णतां गता ॥ १ ॥

मिस प्रकार निश्चित हुआ, सो कहते हैं—

आगमोद्धार समिति के एकत्रित हुए सभासदों के परस्पर
से यह अर्थ निश्चित हुआ है ॥ ५४ ॥

अबसे नगर में साधुसम्मेलन के अवसर पर छात्रों की पर्यालोचना
के लिए आगमोद्धार समिति स्थापित हुई थी। उसके सभासद
गणों, श्री आत्मारामजी उपाध्याय, श्री काशीरामजी युवा-
पूज्य श्री समोदक कचित्री, आदि को कि इस समय जयपुर नगर
विद्यमान है, परस्पर मिले और उन्होंने छात्र की पर्यालोचना द्वारा
निर्णय किया है ॥ ५४ ॥

विक्रम संवत् १९९० के अधि श्रवण मास (१९९०) की माघ
के शुक्ल पक्ष की अष्टमी, मंगलवार के दिन, भारतवर्ष
प्रसिद्ध जयपुर नगर में, संवत् रत्नचन्द्र मुनि ने यह निर्बंध
रखा। यह निर्बंध हमें और समस्त प्राणियों को कल्याणकारी
यह लेखक की भावना है ॥ ५५ ५६ ॥

टीकाकार की प्रशस्ति

संवत् १९९० में के माघ शुक्ल पक्ष की अष्टमी के दिन यह शोधक सात टीका
हैं ॥ ५७ ॥

बिजली से चलनेवाला अजमेर में बहुत बड़ा प्रेस मुल गया

आदर्श प्रेस, अजमेर

उमदा काम, समय की पावन्दी और मुनासिब रेट
हमारे खास विशेषताएँ हैं।

संस्कृत, हिन्दी, उर्दू व अंग्रेजी का सब तरह का काम हमारे
यहाँ बहुत सुन्दरता से किया जाता है। मूक-संशोधन
का भी संबंध है, कागज का स्टॉक भी रहता है।

किताबों व पत्र पत्रिकाओं के छापने का खास मबन्ध है।

जैसी माहों से प्रार्थना है कि वे अपनी छपाई का सब काम अपने
इस जैन प्रेस में ही भेजने की कृपा करें।

निवेदक—जीतमल लूथिया, सच्चाटक-भादर्स प्रेस.

पता—आदर्श प्रेस, अजमेर.

(केसरगञ्ज बाकशाने के पास)

आदर्श पुस्तक-भण्डार

आदर्श प्रेस के मकान में ही यह पुस्तक भण्डार मुला
है। हिन्दुस्थान भर में मिजनेवाली सब प्रकार की हिन्दी
की उत्तमोत्तम पुस्तकें हमारे यहाँ मिलती हैं। सस्ता-साहित्य
भण्डाल के राजपूताना प्रान्त के हम सोल एजन्ट हैं।
अश्लील या मनुष्य-जीवन को गिरानेवाली पुस्तकें हम नहीं
बेचते। बड़ा सूचीपत्र मुफ्त भेगाइए।

पता—आदर्श पुस्तक-भण्डार, केसरगञ्ज, अजमेर.

खेतीदान समालोचना

की

प्रस्तावना

(४०—सप्तमस्कन्ध की पवित्र मुद्रिका रत्नचन्द्रिका अध्याय)

(जैन ग्रन्थों के अध्याय महायोगिक में शतावधानी प०. मुनिर्भी रत्नचन्द्रजी म. ने रत्नयोगान्त समालोचना नामक निबन्ध मीठ्य में प्रकाशित कराया था । उसकी आलोचना प. अजित-कुमारजी ने जैन मित्र में की थी । जिसका यह उत्तर है । मरदा होश कि यह उत्तर जैनमित्र में ही प्रकाशित जिनमें जैनमित्र के पाठक दोनों तरफ का बाँटो को समझ सकने । परन्तु रोद है कि यह लेख जैनमित्र के पाठक भेजा भी गया, लेकिन जैनमित्र ने इसके प्रकाश को उदासता नहीं दिखाई । जैनमित्र को अपनी इस जिम्मेदारी का क्यात आवश्यक रखना था । रोद ! इसमें तो मुनिभा के लेखका महत्त्वही पड़ता है । यह लेख और पत्रों में भी प्रकाशित हुआ है परन्तु इसका मूल लेख जैन प्रकारा में ही प्रकाशित या इस लिये यह लेख भी प्रकाशित किया जाता है । ख.)

दिगम्बर सम्प्रदाय की ओर से प्रकाशित होने वाले “जैन मित्र” नाम के साप्ताहिक पत्र में वर्ष १९ के अंक ४१ में दिगम्बर सम्प्रदाय के पण्डित श्री अजितकुमारजी शास्त्री ने “खेतीदान समालोचना” नामक संस्कृत के निबन्ध की समा-लोचना करते हुए प्रकृत निबन्ध के उद्देश्य की मर्यादा को उद्घाटन

कर श्वेताम्बर दिगम्बर की साम्प्रदायिक चर्चा में उतर गये हैं। प्रकृत निबंध का उद्देश्य तो केवल यह है कि रेवती गाथापत्रोंने सिद्ध अणुगार को दान दिया है; वह शुद्ध है, किंवा अशुद्ध ? कपोत, मार्जार, कुक्कुट, मांस आदि शब्दों का यहां पर वास्तविक अर्थ पक्षी है या वनस्पति ? महावीर स्वामी ने मांसाहार किया या नहीं ? इत्यादि भाषेय अनेकों की आंर से हो रहे हैं। उनका समाधान करने के लिये ही उक्त निबंध की योजना की गई है। इसी लिये इस निबंध का नाम “रेवतीदान समालोचना” रक्खा गया है, न कि गोशालक कथा समालोचना।

पंडितजी ने उपर्युक्त ध्येय के ऊपर यदि लक्ष दिया होता तो श्वेताम्बर दिगम्बर की अप्रासंगिक (साम्प्रदायिक) चर्चा में नहीं उतरते। क्योंकि ऐसी चर्चाओं का आज तक अन्त नहीं हुआ। ऐसी चर्चाओं में केवल समय के अव्यय के अतिरिक्त कोई लाभ नहीं वहिक उस्ता अन्दर हो अन्दर विशेष बढ़ने के साथ साथ ईषा द्वेष की वृद्धि होती है। वर्तमान समय वैमनास बढ़ाने का नहीं है, प्रभुत परस्पर ऐक्य तथा प्रेम बढ़ाने का है। दूसरी बात यह है कि, जिस सम्प्रदाय की समीक्षा या तुलना करना हो तो प्रथम उस सम्प्रदाय की परिभाषा से पूर्ण जानकारी होना आवश्यक है। श्वेताम्बर सम्प्रदाय की समीक्षा व तुलना श्वेताम्बर सम्प्रदाय की परिभाषा से ही हो सकता है, न कि दिगम्बर सम्प्रदाय की परिभाषा या अन्य दर्शन की परिभाषा से। इसी तरह न श्वेताम्बर सम्प्रदाय का समीक्षा व तुलना दिगम्बर सम्प्रदाय की परिभाषा से ही हो सकता है, न कि श्वेताम्बर सम्प्रदाय की परिभाषा या अन्य दर्शन की परिभाषा से। समीक्षा करनेवाले

जाता है। छठी आशंका में पंडितजी लिखते हैं कि “सबसे बड़ी आपत्ति इस विषय में यह है कि भगवान् महावीर स्वामी ने अपने योग्य भोजन लाने के लिये सिद्ध साधु को जिस रेवतीगाथा पत्र के घर भेजा, वह मद्य पीने वाली तथा मांस भक्षण करनेवाली थी। उपासक दशांग सूत्र के आठवें अध्याय के २४०-२४२-२४४ वें सूत्र के अनुसार उसका मलिन आचरण इस योग्य सिद्ध नहीं होता कि उसके घर साधारण गृहस्थ-जैन-के स्थाने योग्य भी आहार मिल सके। उसने जब विप-रात्रों द्वारा अपनी १२ सौतों को मार दिया था तथा मद्य, मांस, मधु स्नान पान में लीन रहती थी। श्रेणिक राजा की वध निषेध की आज्ञा रहने पर भी वह अपने पिता के घर से बछड़े मरवाकर मँगवा लिया करती थी। तब उसके घर कबूतर मुर्गे का मांस होना सरल संभव है। यदि वह मांस भक्षण न करती होती तब तो कपोत, कुक्कुट शब्द का अर्थ वनस्पति किसी प्रकार किया भी जाता। मांस लोडुपी के घर सीधे सरल मांस आदि शब्दों का अर्थ वनस्पति रूप करना ठीक नहीं।”

इसमें पंडितजी ने सिद्ध मुनि की दान देनेवाली रेवती को उपासक दशा में वर्णन की हुई रेवती मान ली है। यह पंडितजी की बड़ी भूल है। पंडितजी का कर्तव्य था कि दूसरों की त्रुटि को दिखाने के पहिले रेवती से संयंत्र रखने वाले दोनों पाठों को भली भाँति विचारते हुये पूर्वापर सम्बन्ध को अच्छा तरह से हृदयंगम कर लेते जिससे कि यह अज्ञानान्धकाराश्रित न रहता कि दोनों पाठों में आई हुई रेवती एक नहीं बरिक्त श्रृङ्ख २ हैं।

परंतु न मालूम पंडितजी ने बिना देखे भाले किस प्रकार ये पारांकाये उपस्थित कर दी । अस्तु ।

वस्तु स्थिति इस प्रकार है कि उपासक दशा के आठवें अध्याय में जिस रेवती का वर्णन आया है वह, राजगृहों की रहने वाली महाशयकजी की पत्नी है । उसका पाठ निम्नलिखित प्रकार से है—

“वत्पणं रायगिहं महासयय नाम गाहावहं परिवसहं । तम्म महासयस्य रेवहं पामोक्त्वाप्सो तेरस भागियाप्सो होत्वा ।” और भी भगवती सूत्र में जिस रेवती का वर्णन आया है उसका पाठ इस प्रकार है—

“गन्धर्म्म तुमं सीहा ! मोंद्वय दाम नगरं रेवतीए गाहा-वविणोए गिहं”

(१) उपासक दशा में वर्णित रेवती राजगृहों की रहने वाली महाशयकजी की स्त्री परवन्त्र है और (२) भगवतीजी सूत्र में वर्णन की हुई रेवती मंदिरक ग्रामनामा नगर की रहने वाली स्वतंत्र अर्थात् गृह स्वामिनी है । उरमुक्त दोनों रेवती पृथक् २ ग्रामों की रहने वाली होने के कारण पृथक् २ ही हैं । उपासक दशा सूत्र में वर्णन की हुई “रेवती” मांसाहारिणी, मृत, हिसक और अध-मित्री है, जिसको पंडितजी भी स्वीकार करने दें । परन्तु भगवती सूत्र में वर्णन की हुई रेवती भी भगवान महाबोर स्वामी के चरणों में भक्तिभाव रखने वाली और सिद्ध अणुगार को दान देनेवाली धर्मज्ञ है । उपासक दशा सूत्र में जिस रेवती का वर्णन आया है वह मर कर नरक में गई है और सिद्ध अणुगार को दान देनेवाली जिस रेवती का वर्णन भगवती सूत्र में आया है

वह यहाँ से काल करके स्वर्ग में जानेवाली बताई है । इन दोनों के सूत्र पाठ इस प्रकार से हैं ।

“तएणं सा रेवइ गाहावइणो अंतोसत्तरत्तस्स अलसएणं वाहिणा अभिभूया अट्ट दुदट्ट वसट्ठा कालमा से कालंकिष्वा इमोसं रयणप्पभाए पुढवीए लोखएच्छूए नए चउरासोई वाससई ठिइएसु नेरइएसुनरइएत्ताए उववएणा” पहा०८:२७ ।

“तएणं तीए रेवतीए गाहावतिणीए तेणं दब्ब सुद्धेणं जाव वायेणं सोइए अणगारे पडिक्कामिए समाणेदेवाउए निदब्धे जहा विजयास जाव जम्म जीवियफले रेवतीए गाहा वतिणीए ।”

भाग १५-१०

इन दोनों पाठों से वाचक वर्ग तथा परिहृतजी अच्छी तरह से समझ गये होंगे कि, उपासक दशा सूत्र में वर्णन की हुई रेवती ने देवता का आयुष्य बाँधा और अपना जन्म सफल किया । इससे यह भी आशा की जा सकती है, कि अब परिहृतजी को भी दोनों रेवतियों को पृथक् २ समझने के कारण अपनी मोटी आपशि दूर करने में देर न लगेगी । आगे परिहृतजी लिखते हैं कि, यदि यह मांस भक्षण न करतो होतो तब तो कपोत, कुक्कुट शब्दों का अर्थ वनस्पति रूप किसी प्रकार किया जाता । इस लेख से यह तो भली भाँति विदित होता है, कि इन शब्दों का वनस्पति अर्थ होना तो परिहृतजी को भी मान्य है । अब विचारणीय यह है कि, वहाँ वनस्पति अर्थ है या नहीं । इसका समाधान अभी लिखित है कि देवता का आयुष्य बाँधने वाली भगवती सूत्र ने वर्णन की हुई रेवती मांसाहार करने वाली नहीं, यह तो दो और दो चार जैसी बात है । क्योंकि खेताभर सिद्धांतों में

रसदार में राक का आनु बाधना माना है, भक्षण मृत
 रसों को हूँ देवों का देकादुष बाधना कथित है अतः राक
 ने समानर होना यह किमी प्रकार भी नहीं हो सकता ।

सातवीं आराध्य में पतिहन्त्रों लिखने है कि पतिहानि
 (को) राक भोजन दूषित एवं अधम बनताया है इत्यादि—
 रेशम्बर और दिगम्बर दोनों सम्प्रदायों में वार्धम अधम-
 यं गये हैं । ऊहों में बासी राक तथा अन्नादिको किमी ने भी
 पक्का नहीं माना, (देखिये दिगम्बरों पंडित दौलतगामजी कृष्ण
 झाकोय नाम की पुस्तक) इसमें वार्धम अधम्यों के नाम इस
 प्रकार लिखा गये है ।

१ कोला, २ पौल वहा, ३ निशि भोजन, ४ बहु बीजा
 ५ देगाय, ६ संधाय, ७ बह, ८ पापल, ९ ऊमर, १० कु-
 द, ११ पाकर जो फल होय, १२ अन्नाय ॥ १३ कन्दमूल,
 १४ माटो, १५ विष, १६ आम्रिष, १७ मधु, १८ माखन अरु,
 १९ मदिरा पान ॥ २० फल, २० तुष्य, २१ तुषार, २२ पत्रितरस,
 २ त्रिनमव वार्धम दत्तार ॥

इन वार्धम अधम्यों में बासी राक तथा अन्न.दि का कहीं
 जिक्र नहीं है । यदि पलित रस शब्द से बासी अन्नादि महय
 कर लिया जाय तो यह ठीक नहीं । क्योंकि इसका अर्थ यह है
 कि, जिस वस्तु से सर्वगन्ध रस स्पर्श बदल गये हों या तो सह
 गया हो वह अधम्य है । चाहे वह रात बासी हो या उसी दिन
 का बना हुआ क्यों न हो, यह रसविक्रिया श्रुत परत्वेन दृष्टक २
 होती है । मीप्प श्रुत में जो वस्तु एक रात्रि से बिगड़ जाती है
 वही शरद श्रुत में दो दिन तक नहीं बिगड़ती, और वर्षा श्रुत

में वही प्रातः काल से शाम तक बिगड़े बिना नहीं रहती, इस लिये इसमें समय का नियम नहीं हो सकता। अभक्ष्यता में केवल यह देखना योग्य है कि रस चलित हुआ है या नहीं ? यदि रस चलित हो गया है तो श्वेताम्बर और दिगम्बर दोनों आभूषणों में अभक्ष्य है। यदि रस चलित नहीं हुआ है तो अभक्ष्य नहीं। इस प्रमाण से अब यह भी प्रकट हो गया होगा कि दोनों आभूषण केवल वासी अन्नादि को अभक्ष्य नहीं ठहराते, प्रत्युत चलित रस वाली वस्तु को अभक्ष्य ठहराते हैं। तो रेवती को यहुराई हुई वासी वस्तु चलित रस न होने से आदेय है और उर्ला का सिंह मुनिने दान लिया है। इसमें किसी प्रकार का दोष नहीं होता। आठवीं आरांका में परिहृतजी लिखते हैं कि भगवती सूत्र एक गगनमय है, उसमें पर्वों के समान अक्षर संख्यापूर्ण करने की कोई कठिनाई नहीं थी, जो मन्थकार को कुम्भायज्ञ, बीजपूरक मरीखे सरल वनस्पति सूषक शब्द धोड़कर कुम्भट, कपोत सरीखे पक्षी बाधक शब्द लिखने पड़े—

इसका उत्तर यह है कि, कितनेक शब्द ऐसे हैं जो कि देहाचार के अनुसार रुद्धि गव होते हुए भी कितने ही अर्थों के प्रतिपादक होते हैं। जैसे कि “सूया” शब्द शुद्धपक्षी (तोता) के अर्थ में प्रयुक्त होता हुआ भी रुद्धि को तरह ही सूया नामक शाक के अर्थ में भी प्रयुक्त होता है। सूया शाक है जो पात्रक शाक के साथ प्रायः बनाया जाता है, उसको बेचनेवाले पुकारते हैं कि जो “सूया पालक” उसमयय माहक शाय हो यह समझ जाते हैं कि सूया का साथ बेचनेवाला पुकारता है। न कि सूया

मातृम हो जायगा और वृत्ति के आशय समझने में भी किस प्रकार की अड़चन प्रतीत न होगी ।

समालोचना के दूसरे पैराग्राफ में पंडितजी ने लिखा है कि “किन्तु उसके घर मार्जार के लिये जो वासी (रातभर रखवा हुआ) कुत्तुड मांस है इत्यादि ।”

इसमें मार्जार के लिए यह चतुर्थी विभक्ति का अर्थ पंडितजी ने कहाँ से लिया । रेवतीदान समालोचना में तो कहाँ भी मार्जार के लिए वासी रखवा हुआ ऐसा अर्थ नहीं किया ! इस प्रकार स्वयम्भुव मनः कल्पित अर्थ लिखने की पंडितजी के लिए क्या आवश्यकता प्रतीत हुई ? वास्तव में तो टीका में ही बताया गया है कि, यह शब्दार्थ मात्र है भावार्थ आगे स्पष्ट होगा । यदि पंडितजी को समालोचना हो करना थी तो प्रथम निबन्ध में लिखा हुआ उक्त का निरिक्त भावार्थ देखने के परचान् समालोचना करना चाहिये था । अपूर्ण समालोचना करके उक्त वाक्य का विपरीत अर्थ कर पाठकों को शंकाशंका बनाने का प्रयत्न नहीं करना था । मार्जार और कडए इन शब्दों का अर्थ रेवतीदान समालोचना के व्याख्यान में और तैनालीम में श्लोक में स्पष्ट दिखता दिया गया है । पाठक न तो तथा पंडितजी उस अर्थ को वहाँ से देख ले और उन्हीं के अनुसार चतुर्थी समास के स्थान पर यदि तृतीया चतुर्थी अर्थो-नुसन्धान करें तो भ्रष्ट है ।

(‘इन प्रकाश’ में उद्धृत)

श्री जैन गुरुकुल व्यावर का निवेदन

यदि आप व्यवहारिक, धार्मिक एवं औद्योगिक शिक्षा के द्वाय अपने पुत्र को सहाय, धर्म प्रेमी एवं स्वाभय बनाना चाहते हैं तो—

अपने बच्चों को गुरुकुल में भेजिये

प्रवेश की योग्यता—हिन्दी ३ या गुजराती ४ किताब पढ़े हुए, ८ से ११ वर्ष की उम्र तक के, निरोग, बुद्धिमान बच्चे किसी धान्त या जाति के हों वे गुरुकुल में ७ वर्ष के लिए प्रविष्ट हो सकेंगे। मासिक रु० १०), ५), ५) यथारुचि भोजन एवं दंडर या भी भर्ती करा सकेंगे।

शिक्षण क्या २ मिलेगा ?

भाषा ज्ञान—हिन्दी, गुजराती, इंग्लिश, संस्कृत, प्राकृतदि।

बौद्धिक कथ—सम्भाषन कला, वक्तव्य, व्यापारिक शिक्षा, संगीतादि।

औद्योगिक—खिलाई, धातुधाना, वाइगिटिंग, हांजियरी आदि।

आपका कर्तव्य

गुरुकुल को हर प्रकार सहायता देना, मद्यन बनना देना, स्थायी कोष बनाना, अनुकूल निर्माणों का खर्च देना, और अपने बच्चों को गुरुकुल में भेजना आपका कर्तव्य है। यदि आपकी सर्व प्रकार से सहाय-भूति व सहायता होती रही तो थोड़े अर्से में ही जैन-गुरुकुल, व्यावर जैन विद्यापीठ बन सकेगा।

पत्र-व्यवहार का पता.—

मया, जैन-गुरुकुल, व्यावर.

शिक्षार्थी सुन्दर सस्ती

और

उपयोगी पुस्तकें ।

१—जैन शिक्षा-भाग १	→)॥	१८—मोक्ष की कुञ्जी २ भाग)	१)
२—जैन शिक्षा-भाग २	→)॥	१९—आत्माबोध भाग १-२-३ १)	१)
३—जैन शिक्षा-भाग ३	→)॥	२०—आत्माबोध भाग २-३	→)॥
४—जैन शिक्षा-भाग ४ (सचित्र)	→)॥	२१—काम्य विश्वसु	→)॥
५—जैन शिक्षा-भाग ५	→)॥	२२—परमात्म प्रकाश	→)॥
६—वाङ्मनीत	→)॥	२३—भाव अनुष्ठान	→)॥
७—भादर्श जैन	→)॥	२४—मोक्ष की कुञ्जी वेभाग	→)॥
८—भादर्श साधु	→)॥	२५—सामायिकप्रति० प्रश्नोत्तर	→)॥
९—विद्यार्थी व युवकों से	→)॥	२६—तत्त्वार्थाधिगमसूत्रम्	→)॥
१०—विद्यार्थी की भावना	→)॥	२७—आत्मसिद्धि	→)॥
११—मुखी कैसे बनें ?	→)॥	२८—आत्मसिद्धि और सुसम्पन्न	→)॥
१२—धन का दुरुपयोग	→)॥	२९—धर्मों में भिन्नता	→)॥
१३—देशम व चर्चों के वस्तु	→)॥	३०—जैनधर्म पर धर्म्य धर्मों का	प्रभाव
१४—समुबध कैसे दके ?	→)॥	३१—समस्ति के चिह्न १ भाग	→)॥
१५—आत्म-जागृति-भावना	→)॥	३२—समस्ति के चिह्न २ भाग	→)॥
१६—समस्ति स्वरूप भावना	→)॥	३३—सम्यक्त्व के आठ अंग	→)॥
१७—मोक्ष की कुञ्जी १ भाग	→)॥	३४—महावीर और कृष्ण	→)॥

व्यवस्थापकः—

आत्म-जागृति-कार्यालय, ठि० जैन-गुरुकुल, ज्वावर.

नथमल दलिया द्वारा

प्रेष (देशगणक-कानून के पाठ) प्रश्नोत्तर में उत्ती ।

